संत कबीर और श्रीनारायण गुरु के विचारों की प्रासंगिकता वर्तमान भारतीय सामाजिक सन्दर्भ में

Santh Kabir Aur Sree Narayana Guru Ke Vicharom Ki Prasangikatha Varthaman Bharathiya Samajik Sandharbh Mem

Thesis Submitted to the
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By
SANTHA E. R.

Supervising Teacher :
Dr. S. SHAJAHAN
PROFESSOR

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

1994

C E R T I F I C A T E

This is to certify that this THESIS is a bonafied record of work carried out by SANTHA.E.R. under my supervision for Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Prof: Dr. S.SHAJAHAN
(Supervising Teacher)

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
KOCHI , Pin 682 022.

Date : 7-4-1994.

प्राक्कथन

प्राक्कथन

"कबीर और श्रीनारायण गुरु के विचारों की प्रासंगिकता वर्तमान भारतीय सामाजिक संदर्भ में " शीर्षक इस शोध प्रबन्ध में कबीर और श्रीनारायण गुरु के विचारों की प्रासंगिकता को समसामयिक भारतीय परिवेश में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । सोद्देश्य-परकता से युक्त प्रस्तुत शोध कार्य दो महान समाज सुधारक, युग दृष्टाओं के विचारों की सामाजिक प्रतिबद्धता का स्वरूप प्रस्तुत करता है । कबीर और श्रीनारायण गुरु की दृष्टि यह सिद्ध करती है कि मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा से ही सामाजिक कल्याण की सम्भावना उभर सकती है । धर्म, जाति, क्षेत्र और भाषा के बाहरी आवरणों के अन्दर जकडी हुई मानवीयता को ढूँढ निकालने का प्रयत्न इन महान विचारकों में दृष्टिगत होता है ।

अध्ययन की सुविधा को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को हमने पाँच अध्यायों में विभक्त किया है । प्रथम अध्याय का शीर्षक है संत कबीर और श्रीनारायण गुरु की जीवनी । इस में कबीर और श्रीनारायण गुरु के जन्म, परिवार, माता-पिता, शिक्षा आदि बातों पर विचार किया गया है । उन दोनों महात्माओं के व्यक्तित्व की ओर यहाँ प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है । उनके जीवन से संबन्धित महान घटनाओं का उल्लेख भी इस अध्याय में हुआ है ।

दूसरा अध्याय "संत कबीर और श्रीनारायण गुरु की कृतियाँ " हैं । यहाँ कबीर और श्रीनारायण गुरु के विचारों की

रचनात्मक भूमिका पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है । दार्शनिक, भक्तिपरक तथा समाजपरक रचनाओं का मूल्यांकन यहाँ हुआ है ।

तीसरा अध्याय है "संत कबीर और श्रीनारायण गुरू के दार्शनिक विचार " । इस अध्याय में भारतीय दर्शन की श्रृंखला, वेद, उपनिषद्, भगवत् गीता आदि के आधार पर कबीर और श्रीनारायण गुरू के दार्शनिक विचारों पर प्रकाश डाला गया है । भारतीय दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मोक्ष आदि के संबन्ध में कबीर और श्रीनारायण गुरू के विचारों का अध्ययन यहाँ लक्षित किया गया है ।

चौथा अध्याय है - "संत कबीर और श्रीनारायण गुरू के सामाजिक विचार" । यहाँ कबीर और श्रीनारायण गुरू के समय के भारतीय समाज का दयनीय चित्र प्रस्तुत किया गया है । इस अध्याय में कबीर और श्रीनारायण गुरू के समाज सुधार संबन्धी दृष्टिकोण, चिन्तन पद्धति एवं कार्य शैली का विशद वर्णन है । साथ ही साथ बिगडे हुए सामाजिक और धार्मिक वातावरण में जन्म लेकर समाज और धर्म की पुनप्रतिष्ठा के महान कार्यों की ओर अग्रसर होनेवाले इन महापुरुषों के कार्यों की व्याख्या यहाँ दी गयी है ।

पाँचवाँ अध्याय है "संत कबीर और श्रीनारायण गुरु के विचारों की विशिष्टता वर्तमान संदर्भ में" । यहाँ संत कबीर और श्रीनारायण गुरु के विचारों की प्रासंगिकता के आयामों पर प्रकाश डालने का प्रयास है । राजनैतिक, आर्थिक, और धार्मिक संघर्ष के इस वातावरण में कबीर और श्रीनारायण गुरु के विचारों की प्रासंगिकता की ओर प्रकाश डालने का सफल प्रयत्न यहाँ हुआ है । मानव को, जाति, धर्म, भाषा एवं देश की सीमा रेखाओं से मुक्त कर अखिल बन्धुत्व की सीमाओं से जोडने में कबीर और श्रीनारायण गुरु के विचारों की आवश्यकता की ओर यहाँ प्रकाश डाला गया है, जिसमें इस अध्ययन से उभरने वाले निष्कर्षों की प्रस्तुति हुई है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के प्रोफसर आदरणीय गुरुवर डा. एस शाहजहाँ के निर्देशन में संपन्न हुआ है । इस शोध प्रबन्ध के अथ से इति तक मुझे उनसे प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिलते रहे । उनके पथ प्रदर्शन के अभाव में इस प्रबन्ध की पूर्णता असंभव ही होती । मुझे उनसे दिशा एवं दृष्टि मिली है । मैं उनके प्रति आभार प्रकट करना चाहती हूँ । विभाग के अध्यक्ष के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ । विभाग के पुस्तकालय की अध्यक्षा श्रीमती तम्पुरान के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ ।

शोध विषयक सामग्री संकलन में मुझे जिन महद् व्यक्तियों से सहायता मिली है उनमें शिवगिरि मठ के स्वामि चिद्रूपानन्दा

स्वामी गीतानन्दजी, वर्कला गुरु कुलम के मुनि नारायण प्रसाद आदि के प्रति मैं विशेष रूप से कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ ।

इस प्रबन्ध की पूर्ति के लिए जिन मित्रों से मुझे प्रेरणा एवं सहायता मिली है, उन सब के प्रति मैं आभारी हूँ ।

शान्ता ई आर

हिन्दी विभाग
कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, कोची - 22.

तारीख: 7 अप्रैल 1994.

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय .... 1 - 30

संत कबीर और श्रीनारायण गुरु

जीवनी एवं व्यक्तित्व

संत कबीर - जन्म एवं परिवार - माता पिता - शिक्षा-दीक्षा - गुरू - पारिवारिक जीवन - व्यक्तित्व - धार्मिकता - अन्धविश्वासों का विरोध एवं मानव कल्याण की भावना - सेवा भाव तथा परहित साधन - भक्ति - समाज सुधार

श्रीनारायण गुरू - जन्म और परिवार - शिक्षा-दीक्षा - वैवाहिक जीवन - परिव्रज्या - रोग और महासमाधि - व्यक्तित्व - वैरागी व्यक्तित्व - धार्मिकता - अन्ध विश्वासों का विरोध एवं मानवता की ओर झुकाव - दयालुता - अध्यापक वृत्ति - भक्त का रूप - निर्भयता - समाज सुधारक

पृष्ठ संख्या

दूसरा अध्याय .... 31 - 64

संत कबीर और श्रीनारायण गुरू की रचनायें

कबीर की रचनायें - दार्शनिक - भक्ति परक - समाज परक - दार्शनिक रचनायें - अद्वैत दर्शन संबन्धी - योग परक - सिद्धान्त या वेदान्त परक -

श्रीनारायण गुरू की रचनायें - दार्शनिक - भक्ति परक - सामाजिक - अनूदित कृतियाँ - अद्वैत दर्शन संबन्धी - योगपरक - सिद्धान्त परक - कबीर और श्रीनारायण गुरू की कृतियाँ - समानता और असमानता

तीसरा अध्याय .... 65 - 109

संत कबीर और श्रीनारायण गुरू के दार्शनिक विचार

(क) दर्शन - अद्वैत दर्शन - दर्शन के प्रमुख अंग - ब्रह्म - जीव - जगत् - माया

(ख) कबीर और श्रीनारायण गुरू के दार्शनिक विचार - कबीर के ब्रह्म संबन्धी विचार - आत्मा - माया - श्रीनारायण गुरू के ब्रह्म संबन्धी विचार - आत्मा - माया - जगत् - अंतर - अन्य समानताएँ - उपसंहार

(ग) योग दर्शन - संत कबीर और श्रीनारायण गुरू एवं योग मार्ग - योग साधना का सामाजिक पक्ष कबीर और गुरू में - निष्कर्ष

पृष्ठ संख्या

चौथा अध्याय .... 110 - 160

कबीर और श्रीनारायण गुरु के सामाजिक विचार

समाज शब्द की व्युत्पत्ति और परिभाषा - कबीर और श्रीनारायण गुरु का समकालीन भारतीय समाज - कबीर कालीन भारतीय समाज - वर्ण एवं जाति व्यवस्था - विरोध का स्वर - ऊँच नीच और छुआछूत का निवारण - मानव की समानता एवं एकता - धर्म और धार्मिक संस्कार - कृपावान ईश्वर की प्रतिष्ठा - आचारों की अर्थहीनता - सामाजिक नीति का स्वर - पारिवारिक जीवन - नारी भावना - आश्रम धर्म - श्रीनारायण गुरु का समय और केरल का समाज - विरोध का स्वर - वर्ण एवं जाति व्यवस्था - ऊँच नीच और छूआछूत का निवारण - मानव मानव की समानता एवं एकता - ईश्वर की प्रतिष्ठा - सामाजिक नीति का स्वरूप सामाजिक संस्कार - पारिवारिक जीवन की मान्यतायें - जीवन के चार चरण - ब्रह्मचर्य - गार्हस्थ्य - वानप्रस्थ - सन्यास - कबीर और श्रीनारायण गुरु के विचारों की तुलना - निष्कर्ष

पृष्ठ संख्या

पाँचवाँ अध्याय (उपसंहार) ... 161 - 172

संत कबीर और श्रीनारायण गुरु के

विचारों की विशिष्टता - वर्तमान संदर्भ में

सामाजिक आयाम - धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य -
दर्शन और विश्व बन्धुत्व के आधार

सन्दर्भ ग्रंथ सूची .... 173 - 186

पहला अध्याय

संत कबीर और श्रीनारायण गुरु

जीवनी एवं व्यक्तित्व

पहला अध्याय

संत कबीर और श्री नारायण गुरु - जीवनी एवं व्यक्तित्व

महान व्यक्तियों एवं विचारकों के विचार हमेशा उनके व्यक्तित्व से प्रभावित रहते हैं और इस व्यक्तित्व का रूपायन परिस्थितियों के आधार पर होता है । संत कबीर और श्री नारायण गुरु के संबन्ध में भी यही हुआ है । दोनों अपनी परिस्थितियों से प्रेरित एवं प्रभावित रहे । उनकी जीवनी एवं व्यक्तित्व के विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो सकती है । कबीर एवं श्रीनारायण गुरु की जीवनी एवं व्यक्तित्व से संबंधित बातें अन्त:साक्ष्य एवं बहि:साक्ष्य के आधार पर संकलित की जा सकती हैं ।

संत कबीर - जन्म एवं परिवार :

कबीर दास जी के जन्मस्थान एवं परिवार को लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है । इस संबन्ध में मुख्य रूप से तीन मत प्रचलित हैं - एक तो यह कि वे मगहर में उत्पन्न हुए थे,[1] दूसरा यह कि उनका जन्मस्थान काशी था[2] और तीसरा यह कि वे आजमगढ जिले के बेलहरा गाँव में उत्पन्न हुए थे । यहाँ पर इन बातों का विस्तृत विश्लेषण अनावश्यक रहेगा, इसलिए सभी मतों के निष्कर्ष के रूप में अंत:साक्ष्य, बाह:साक्ष्य एवं जनश्रुति,

---

1. डा. गोविन्द त्रिगुणायत - कबीर की विचार धारा - पृ. 33
2. श्यामसुन्दरदास - कबीर ग्रंथावली - पृ. 23

तीनों को एक साथ मिलाकर कबीर दास को काशी का मान सकते हैं ।[1]

कबीर दास जी के माता पिता और परिवार के संबन्ध में भी विद्वान एकमत नहीं हैं । उनकी जाति के बारे में भी मतभेद हैं । किसी ने उन्हें ब्राह्मण कहा है ।[2] किसी ने उन्हें जुगी या जोगी जाति का माना है ।[3] लेकिन कबीर दास जुलहा परिवार के थे, ऐसा मानना ही समीचीन मालूम होता है । अपनी कृतियों में कबीरदास ने बार बार अपने को जुलाहा कहा है ।[4] कबीर दास जी के जन्म के बारे में भी विद्वान एकमत नहीं है । फिर भी सभी मतों के विश्लेषण से उनका समय चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच माना जा सकता है ।[5]

बहि:साक्ष्य के अन्तर्गत सर्वप्रथम कबीर की जन्मतिथि बताने वाला ग्रंथ कबीर चरित्र बोध है । इसमें कहा गया है कि संवत् चौंदह सौ पचपन विक्रमी ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार के दिन सत्य पुरुष का तेज

---

1. डा. सरनामसिंह शर्मा - कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त - पृ. 14
2. डा. रामकुमार वर्मा - संत कबीर - पृ. 116
3. डा. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर - पृ. 5, 14.
4. सर्ग लोक में क्या दुख पडिया, तुम्ह आई कलि मांही ।
   जाति जुलाहा नाम कबीरा, अजहूं पतीजै नांही ।।
   डा. पुष्पलाल सिंह एम. - कबीर ग्रंथावली सटीक -पदावली - 270
5. राजेन्द्रसिंह - संत कबीर दर्शन - पृ. 23

लहरतालाब में उतरा ।[1] कबीर पंथियों में निम्नलिखित दोहा कबीर के आविर्भाव के संबन्ध में प्रचलित है :

"चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाट ठए ।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रकट भए।।"

माता-पिता :

कबीर दास के माता पिता के संबन्ध में भी मतभेद है । कुछ श्रद्धालु भक्त कबीर को एक बाल विधवा ब्राह्मणी की सन्तान मानते हैं और उनका लालन पालन जुलाहा दम्पति नीमा और नीरू द्वारा मानते हैं । जुलाहा दम्पति नीरू और नीमा को कबीर के माता पिता मानना ही उचित होगा । कबीर उनके औरस पुत्र थे ।[2] बचपन से ही कबीर का रूप और वर्ण अलौकिक था ।[3] कबीर शब्द अरबी भाषा का है । इसका अर्थ महान होता है । कहा जाता है कि जब काजी ने कबीर का नाम रखने के लिए किताब खोली तो उसे कबीर शब्द ही सर्वप्रथम दिखाई पडा और उसने इनका नाम कबीर रख दिया ।[4] यह नाम आगे चलकर उन के जीवन में सार्थक निकला ।

---

1. कबीर चरित्र बोध (बोध सागर, स्वा. युगलानंद द्वारा संशोधित) पृ. 6
2. डा. रामजीलाल सहायक - कबीर दर्शन - पृ. 20
3. डा. रामजीलाल सहायक - कबीर दर्शन - पृ. 24
4. डा. रामजीलाल सहायक - कबीर दर्शन - पृ. 26

शिक्षा-दीक्षा :

मानव जीवन की सफलता का एक अनिवार्य तत्व है शिक्षा । मनुष्य के हृदय से अन्धकार को निकाल कर प्रकाश की प्रतिष्ठा करने में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है । शिक्षा के लिए साधारणतः पाठशाला, पुस्तक एवं अध्यापक अनिवार्य होते हैं । लेकिन कबीर की शिक्षा में पाठशाला, पुस्तक एवं अध्यापक का कोई स्थान नहीं है । समस्त संसार उनके लिए पाठशाला था और सभी ज्ञानी लोग उनके अध्यापक थे । कबीर की शिक्षा दीक्षा के संबन्ध में भी विवाद है । कबीर ने "मसि कागद छूयो नहीं " तथा "विधा न परउ" कहा है, इसी से शिक्षा दीक्षा में उन्हें कोरा कहा गया । लेकिन पुस्तक पढना और कागज़ पर लिखना तथा डिग्री और उपाधियाँ पाना-शिक्षा नहीं कही जा सकती । शुद्ध शिक्षा अनुभव जन्य ज्ञान होता है और वही शुद्ध ज्ञान मनुष्य का विभिन्न प्रकार का विकास करता है और मानव को सच्चा मानव बनाता है । कबीर को ऐसा ही ज्ञान प्राप्त हुआ था । भक्तों की कथायें, संतों की वाणियाँ, दर्शन की सामान्य चर्चायें, सूफियों की ललित प्रेमाख्यान आदि से कबीर दास जी ने काफी शिक्षा ग्रहण की थी ।[1] कबीर के जीवन से सिद्ध होता है कि वे सच्चे मानव ही नहीं, वरन् महामानव और महानात्मा थे, वे प्रतिभाशाली थे, धर्म, दर्शन, साधना आदि सभी क्षेत्रों में उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया ।

शिक्षा के संबन्ध में कबीर का आदर्श भी कुछ भिन्न था । वे पुस्तक ज्ञान को महत्व नहीं देते थे । उनकी वाणी से ऐसा प्रतीत होता है

---

1. डा. सरनाम सिंह शर्मा - कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त - पृ. 39

कि वे विचारों को प्रेरित करने वाली क्षमता के अर्जन को शिक्षा मानते थे । जिससे विचार बोझल हो उसे वे शिक्षा मानने के लिए तैयार नहीं थे । पुस्तकीय ज्ञान उन की दृष्टि में जंजाल था, जिस में उलझकर मनुष्य दुःख भोगता है ।[1] ऐसे ज्ञान को दृष्टि में रखकर ही कबीर ने अपने को अनभिज्ञ कहा है । कबीर दास जी का दृढ विश्वास था कि पुस्तक ज्ञान से कोई भी पण्डित नहीं बन सकता । यथार्थ पण्डित वही है जो ब्रह्म को जानता है । इस प्रकार ब्रह्म ज्ञान को कबीर ने शिक्षा का उद्देश्य माना । स्वयं अपने जीवन से कबीर ने यह सिद्ध किया । कबीर का अध्ययन बडा गहरा था । उन्होंने घूमते फिरते साधु-संगति कर सच्चाई को ग्रहण करके ज्ञानार्जन किया और भक्ति की दीक्षा ली । इस प्रकार विविध फूलों में बार बार भ्रमण करके मधु को इकट्ठा करने वाले मधुमक्खी के समान कबीर दास ने इधर उधर घूमते हुए सच्चाई को ग्रहण किया ।

कबीर के गुरु :

भारतीय तत्व चिन्तकों ने आध्यात्मिक विकास के लिए किसी योग्य गुरु का होना अनिवार्य माना है । कबीर दास जी भी गुरु को अत्यधिक महत्व देते हैं । लेकिन कबीर के गुरु के विषय में भी विवाद रहे हैं ।

---

1. पोथी पढि पढि जग मुवा, पंडित भया न कोइ ।
   एकै आषिर पीव का, पढै सु पंडित होइ ।।
   साखी-कथनी बिना करनी कौ - अंग -4

इस संबन्ध में विद्वानों के तीन मत है कि कबीर के कोई मानव गुरु थे ही नहीं,[1] कबीर शेख तकी के शिष्य थे,[2] और कबीर स्वामी रामानंद के शिष्य थे ।[3] इन मतों में तीसरा मत अधिक मानने योग्य मालूम होता है । जनश्रुति, समकालीनता, कबीर की निजि उक्ति, अन्य महात्माओं की वाणियाँ तथा प्राचीन कृतियाँ, कबीर के औक्तिक संकेत, राम-नाम के प्रति कबीर का आग्रह आदि बातें सिद्ध करती हैं कि रामानंद ही कबीर दास जी के गुरु थे । कबीर दास जी की शिक्षा पद्धति में गुरु का सर्वश्रेष्ठ महत्व है । उन्होने गुरु को ईश्वर से भी बडा माना है ।[4] सूक्ष्म दृष्टि से देखने से कबीर की गुरु संबन्धी संकल्पना अतिमानवीय लगती है ।

पारिवारिक जीवन :

कबीर पारिवारिक जीवन बिताने वाले थे । कबीर के पारिवारिक जीवन से सिद्ध होता है कि आध्यात्मिकता के मार्ग में वैवाहिक जीवन बाधा नहीं है । कबीर दास ने एक साथ परिवार का पालन पोषण भी किया और अपना आध्यात्मिक पथ भी प्रशस्त कर दिया । कबीर

---

1. डा. मोहनसिंह - कबीर - हिस बाइग्राफी - पृ. 22-24
2. डा. रामप्रसाद त्रिपाठी - हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक पत्रिका) सन् 1932 - पृ. 198
3. प. रामचन्द्र शुक्ल , हि. सा. इतिहास - पृ. 93
4. गुरु गोविन्द दोउ खडे, काके लागूं पाँव
   बलिहारी गुरु आपनी, जिन गोविन्द दिया उपगार
   श्यामसुन्दर दास - कबीर ग्रंथावली - पृ. 101

गृहस्थ थे और वैरागी भी । वे घरेलू धन्धा करके जीविका चलाते थे । अन्तःसाक्ष्य से कबीर के गृहस्थ जीवन का पता चलता है । उन्होंने अपनी पत्नी का नाम बदल कर रामजनिया रख लिया ।[1] कबीर का गृहस्थ जीवन सुखमय नहीं था ।[2] लेकिन उन्होंने सभी प्रकार के दुखों को सहर्ष सहन किया और गृहस्थ जीवन में भी वैराग्य भावना को अपनाया । उन्होंने घर नहीं छोडा, वरन् घर में ही रहकर अपने कर्तव्यों को निभाते हुए निरासक्त जीवन बिताया । वे स्वभाव से विरक्त थे, करनी से निरासक्त थे । किन्तु उन्होंने जगत् में रहते हुए लोकसंग्रहार्थ निष्काम काम करने की प्रेरणा सब को दी । उनकी समदृष्टि ने ही उन्हें सार्वजनीन और सार्वभौम बना दिया । निरासक्त और वैरागी जीवन के निर्वाह के लिए भगवान से उन्होंने इतना ही माँगा कि दो सेर चून, पाव भर घी, आधा सेर दाल जिससे दोनों समय का भोजन किया जा सके और एक चारपाई बिछौना और सन्तों की सेवा । इस प्रकार कबीर ने वैराग्य और निरासक्त भाव से अपना गृहस्थ जीवन बिताया । पारिवारिक जीवन के सुखमय न होते हुए भी उसी घर के दुःख संताप को स्वयं सहकर वे सफल साधक बन सके और मानव के सच्चे जीवन का आदर्श विश्व को दे सके ।

---

1. मेरी बहुरिया को धनिया नाउ ।
   लै राख्यौ रमजनिआ नाउ -
   डा. रामकुमार वर्मा - संत कबीर - रागु आसा -33-पृ. 13
2. कहै कबीर यह दुख कासनि कहिये
   अपने तन की आप ही सहिये -
   श्यामसुन्दर दास -कबीर ग्रंथावली - पृ. 195

जन्मतिथि के समान कबीर की मृत्यु तिथि भी विवाद ग्रस्त है । अन्तःसाक्ष्य से प्रतीत होता है कि कबीर ने दीर्घायु पायी थी ।[1] बहिसाक्ष्य में अनन्तदास की परचाई के अनुसार कबीर ने 120 वर्ष की आयु पायी थी । कबीर की मृत्यु तिथि संवत् 1575 मानना चाहिए ।[2] उसी प्रकार मगहर को कबीर का मृत्यु स्थान भी मान सकते हैं ।[3]

व्यक्तित्व

वैरागी व्यक्तित्व :

कबीर दास जी के व्यक्तित्व में वैरागी भाव पहले से ही विद्यमान थे । युवा होने पर यद्यपि कबीरदास जी गृहस्थ बन गये थे तथापि वैवाहिक जीवन उन के लिए बोझ सा था । फिर भी निरासक्त होकर उन्होंने जीवन बिताया । घर में ही रहकर परमानंद की खोज की; अपना ज्यादा समय उन्होंने भक्ति और भजन में ही बिताया । इस प्रकार जीवन के प्रति कबीर दास बिलकुल उदासीन रहे । युवावस्था में ही जो वैराग्य भावना कबीर के मन में थी उतने आगे चलकर उन्हें एक महान दार्शनिक ही बनाया । बचपन से ही रामनाम जपना उनके लिए परम आनंद की बात थी ।

---

1. तीस बरन कर कंपन लागे, नैन नीर अस राल बहे ।
   जिभ्या वचन तूध नहीं निकसै, तब सकराति की बात कहै
   श्यामसुन्दर दास - कबीर ग्रंथावली - पृ. 170
2. डा. रामजीलाल सहायक - कबीर दर्शन - पृ. 46
3. डा. रामजीलाल सहायक - कबीर दर्शन - पृ. 48

इस प्रकार सांसारिक सुखों से दूर रहकर परम तत्व का विचार करते हुए बचपन से ही अनजाने में ही उस परम तत्व की अनुभूति का वे रस ले रहे थे । याने समष्टिपरक सौन्दर्य के मूल्यों को वे महत्ता प्रदान करते थे । अप्राकृत एवं अस्वस्थ जीवन की गति-विगतियों से वे ऊब गये थे । उस परमानन्द का रस पीने का आग्रह उनके मन में बचपन से ही था जो बाद में चलकर उनके एक महान भक्त एवं दार्शनिक बनने में सहायक रहा ।

धार्मिकता :

कबीर दास जी का संपूर्ण जीवन धर्म पर ही आधारित था । धर्म और अधर्म के बीच का अन्तर वे अच्छी तरह जानते थे और धर्म को अधर्म से अलग करने की अदम्य इच्छा भी उनके मन में थी । कबीर के समय में समाज में धार्मिक अव्यवस्था रही थी । कबीर का युग उथल-पुथल का युग था । हिन्दु समाज अपनी घोर हीनावस्था में था । जीवहिंसा, मांस-भक्षण, मधपान, कुचरित्रता, वेश्यागमन आदि अधार्मिक कृत्य समाज में घर कर बैठे थे । धर्मोपदेष्टा कबीर धार्मिक क्षेत्र की इस शोचनीय और पैशाचिक दशा को देखकर दुखी हुए और जनता के दुख को उन्होंने स्वयं अपना निजी दुख माना । कबीर दास ने समाज के धार्मिक पद को सामान्य एवं सरलतम बनाकर उसे नैतिक आचरण युक्त धर्म का रूप दिया । सभी मनुष्यों को

---

1. सुखिया सब संसार है, खावे अरु सोवे ।
   दुखिया दास कबीर है, जागे अरु सोवे -
   श्यामसुन्दर दास - कबीर ग्रंथावली - पृ. ।।

एकता के सूत्र में आबद्ध करना ही उन्होंने यथार्थ धर्म मान लिया और सभी प्राणियों के साथ सद् व्यवहार करना ही धर्म का पालन मान लिया । धर्म के क्षेत्र में वे महाभारत कार के विचारों के निकट रहे ।

"धर्मो यो बाधते धर्म न सधर्मः कुधर्मक:
अविरोधस्तु यो धर्म स धर्मः सत्य विकम ।।"[1]

कबीर के मत में भी वही धर्म सच्चा धर्म था जो लोगों में भिन्नता न लाकर एकता ला सके ।

अन्धविश्वासों का विरोध एवं मानव कल्याण की भावना :

बचपन से ही कबीर दास जी के मन में प्राणिमात्र के लिए विशेष आदर था । ईश्वर की तृप्ति के लिए की जाने वाली पूजा, बलि आदि का वे विरोध करते थे । बकरियों की हत्या करके उसे "हलाल" मानने वाले मुसलमानों के प्रति कबीर दास जी ने अपना विरोध प्रकट किया है । मानव की सर्वतोन्मुखी उन्नति ही कबीर का लक्ष्य था । इस के लिए मनुष्य के आध्यात्मिक और भौतिक दोनों तलों में परिवर्तन और उन्नति को उन्होंने अनिवार्य समझा । वे बचपन से ही हिंसा का विरोध करते थे । मांस और रक्त के लिए प्राणियों की हत्या करने में कबीर दास हिचकते थे । मांस भक्षण का उन्होंने खूब विरोध किया है । अन्धविश्वासों को दूर कर के मनुष्य को मानवता के सच्चे आसन पर पुनप्रतिष्ठित करने के लिए कबीर दास जी ने जो महान कार्य किया इन सब का विशद वर्णन आगे किया जायेगा ।

---

1. महाभारत - 1 वन - 131 - 11

सेवा भाव तथा परहित साधन :

कबीर दास जी के व्यक्तित्व निर्माण में सेवा भाव तथा परहित साधन का अपना विशेष महत्व है । कबीर दास जी दयालु और सेवापरायण महात्मा थे । लोक कल्याण के हेतु ही उनका जीवन था । सेवा से उन्होंने ईश्वर को पहचान लिया । कबीर दास जी ने परोपकार की भूरि भूरि प्रशंसा की है । उनका विचार था कि प्रभु ने उन्हें दूसरों पर दया करने तथा लोक कल्याण करने की आज्ञा दी है । कबीर के जीवन में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं । कबीर दूसरों की रक्षा के लिए अपना सब कुछ त्याग देते थे । एक दिन कबीर ने थान बुनकर तैयार किया, बाज़ार में उसे बेचने गये । मार्ग में एक साधु भिखारी ने कुछ मागा और कबीर ने थान उसे दिया और रीते हाथ घर चले गये । वे साधु संतों की सेवा के अर्थ धन धान्य जुटाते थे । उनके द्वार से कोई साधु बिना कुछ लिए वापिस नहीं जा पाता था । वे शरीरश्रम एवं घरेलू धन्धे, ताने बाने और बुनाई के द्वारा जो कमाते रहे उसे अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि पर तो कम खर्च करते थे और परहित साधन में अधिक व्यय करते थे । कबीर के परिवार के लोग भूखे रह जाते, पृथ्वी पर शयन करते, परन्तु वहाँ साधुओं के लिए हमेशा भोजन और शयन का प्रबन्ध किया जाता था । कबीर का सेवा भाव ऐसे ही उच्च स्तर का था । इस प्रकार कबीर दास जी ने आजीवन सेवा और परहित साधन के लिए अपना जीवन बिताया और इसी सेवा और परहित साधन से ही आगे ईश्वर को पहचान लिया ।

---

1. त्रिलोकी नारायण दीक्षित - परिचयी साहित्य - पृ. 178

भक्ति :

कबीर दास जी के व्यक्तित्व का सबसे श्रेष्ठ पक्ष भक्त का है । इसी भक्त रूप के कारण उनके अन्य रूप स्वयं प्रकाशित होते हैं । बचपन में ही उन्होंने राम नाम जपना आरंभ किया था । राम नाम ने ही आगे चलकर उन्हें एक महान भक्त बनाया । घर या घरवालों के प्रति वे निरासक्त थे और भक्ति और भजन में ही अधिक समय बिताते थे । इस प्रकार पहले से ही अंकुरित भक्ति के बीज ने आगे चलकर एक बडे वट वृक्ष का रूप धारण किया ।

समाज सुधार :

कबीर दास जी के व्यक्तित्व के विकास में समाज सुधार का रूप अत्यन्त महत्वपूर्ण था । समाज सुधारक के रूप में कबीर दास जी के व्यक्तित्व का चमत्कार उनके समाज सुधार संबन्धी कार्यों से व्यक्त हो जाता है । समस्त भारत में कबीर दास जी समाज सुधारक के रूप में माने जाते हैं । कबीर दास जी ने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से समझ लिया कि आध्यात्मिक और भौतिक दोनों तलों की उन्नति से ही समाज सुधार संभव है । इस प्रकार आध्यात्मिक और भौतिक तलों में अद्वैतता का दर्शन करने वाले कबीर के सुधार संबन्धी विचारों में अत्यन्त आधुनिकता हम पाते हैं । समस्त मानव को एकता के सूत्र में बाँध कर एक समत्व सुन्दर समाज, कबीर का लक्ष्य था । इस के लिए समाज में फैले अनाचारों, अत्याचारों, बाह्याडम्बरों, उच्चनीच भावों, छुआ-छूत और जाति भेद को दूर करना उन्होंने अनिवार्य समझा । इस के लिए कबीर दास ने जो प्रयत्न किया इन सब का वर्णन आगे किया जायेगा ।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि कबीर अपने समय के सच्चे प्रतिनिधि थे । कबीर का व्यक्तित्व जितना गूढ प्रतीत होता है उतना ही सरल था । वे जागरूक, चिन्तक और निष्पक्ष आलोचक थे । वे अनासक्त योगी और ईश्वर भक्त थे । कबीर के व्यक्तित्व निर्माण में समाज की परिस्थितियों और आत्म-प्रेरणा का बहुत बडा हाथ था । वे कभी झिझके नहीं , कभी अटके नहीं, कभी भटके नहीं पारिवारिक जीवन के बीच अपनी सत्ता बनाये रखते हुए भी कबीर ने विरक्ति के पथ को अपनाते हुए जन-कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करना चाहा । पीडित और शोषित जनता के उद्धार के लिए सामाजिक सुधार के लक्ष्य को कबीर ने अपनाया । जाति और धर्म पर आधारित उच्च वर्ग के शोषण की संहारात्मक लीला को समाप्त करने के लिए धर्म के नाम पर कुकृत्य करने वालों की भर्त्सना की । जातिवाद और धर्म वाद का खण्डन किया । उच्च नीचत्व को समाप्त करना चाहा । बाहरी धार्मिक रीति रिवाज़ों का खण्डन किया और एक ऐसे पन्थ की स्थापना की जिस में हिन्दु और मुसलमान और निम्न जाति के कहलाने वाले लोग शामिल हो सकते थे । कबीर पन्थ के नाम से विख्यात यह समाज उत्तर भारत के सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन में असीम परिवर्तन लाने में सक्षम रहा । लेकिन व्यावहारिक स्तर पर समाज के बहुसंख्य लोगों को उन्नति के भौतिक पक्ष को प्रवर्तमान करने में यह पन्थ सफल नहीं रहा क्योंकि इसका लक्ष्य भौतिक उन्नति नहीं अपितु आध्यात्मिक उन्नति थी । कबीर ने अपने संपूर्ण जीवन को मेलमिलाव की भावना से युक्त व्यावहारिकता से जोडा था और उपदेश, खण्डन-मण्डन, तीक्ष्ण आलोचना, उपहास और भर्त्सना से युक्त कर लिया था । इस कारण कबीर सभी लोगों के लिए प्रियंकर नहीं थे ।

हर सत्यवादी को, हर धार्मिक सुधारवादी को इस प्रकार की दण्डनीति का सामना करना पडता है । कबीर ने भी सहर्ष विरोधियों का सामना किया था और अपने जीवन को आध्यात्मिक ज्योति से संपूर्ण कर दिया था ।

श्रीनारायण गुरु

जन्म और परिवार :

भारत के सुदूर दक्षिण में स्थित केरल देश की राजधानी तिरुवनन्तपुरम् के सात मील उत्तर में वेंपषन्ति नामक एक छोटा सा सुन्दर गाँव है । प्राचीन काल से ही इस गाँव का बडा महत्व रहा है । "एट्टुवीट्टिलपिल्लमार" नाम से प्रसिद्ध केरल के प्राचीन योद्धा लोगों में एक वेंपषन्ति पिल्ला भी था ।[1] इस से व्यक्त है कि यह गाँव प्राचीन काल से ही वीर प्रसू रहा है । केवल वीर योद्धा ही नहीं अनेक विद्वान भी इस गाँव में जन्म ले चुके थे । इस प्रकार प्राचीनकाल से ही प्रसिद्ध वेंपषन्ति गाँव में "वयलवारम" नामक प्रसिद्ध घराना था । यह घराना बहुत ही प्राचीन था और सांस्कृतिक दृष्टि से विशेष महत्व का था । इस के निकट ही "मनक्कल क्षेत्रं" नामक एक मन्दिर था जिसकी देख रेख प्राचीन काल से ही समाज के उच्च और नीच वर्णों के द्वारा आपस में मिल जुलकर की जाती थी ।[2]

---

1. मूर्कोत्तु कुमारन - श्रीनारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम् - पृ. 65
2. मूर्कोत्तु कुमारन - श्रीनारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम् - पृ. 66

"वयलवारम" घराना भी इस मन्दिर से किसी न किसी प्रकार संबद्ध रहा था । प्राचीनकाल से ही इस घराने में अनेक पण्डितों का प्रादुर्भाव होता रहा है जो साहित्य, वैद्य, ज्योतिष आदि कलाओं में अत्यन्त निपुण थे ।[1] इसी घराने में सन् 1954 में श्रीनारायण गुरु का जन्म हुआ ।[2]

श्रीनारायण गुरु का परिवार शिक्षित व्यक्तियों का था । इस परिवार के लोग वैद्यशास्त्र एवं साहित्य कला में बडे ही निपुण रहे । स्वयं गुरु देव के पिता "माडन आशान" भक्त, विद्वान एवं अध्यापक थे ।[3] उनकी माता कुट्टियम्मा विद्वतंपन्न एवं उत्तम गुणों से युक्त महिला थी ।[4] इस दम्पति की चार सन्तानों में सब से छोटा था श्रीनारायण जिसे प्यार से नाणु पुकारते थे । वे उनके एकमात्र पुत्र थे । पारिवारिक वैशिष्ट्य के कारण विद्वता, भक्ति एवं अन्य कई संस्कार छोटे नारायण को विरासत में मिल गये ।

शिक्षा-दीक्षा:

गुरुदेव के संस्कार भारतीय आचारों के अनुसार हुए थे । विद्यारंभ का संस्कार उस समय हिन्दुओं के बीच विशेष तौर पर चलता था ।

---

1. मूर्कोत्तु कुमारन - श्रीनारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम् - पृ. 7।
2. नटराज गुरु - दि वेड ओफ दि गुरु - पृ. 25
3. के. के. पणिक्कर - श्रीनारायण परमहंसन - पृ. 69
4. के. के. पणिक्कर - श्रीनारायण परमहंसन - पृ. 69

"अधरं विप्रहस्तेन" यही विद्यारंभ की प्रमुख विधि थी । विप्र का अर्थ यहाँ ब्राह्मण न होकर बहुश्रुत पण्डित रहा था । इस प्रकार बहुश्रुत विद्वान एवं ज्योतिर्विद् येंपषन्ति पिल्ला के नेतृत्व में पाँच वर्ष की उम्र में नाणु का विद्यारंभ हुआ ।[1] वय के अनुरूप उनकी शिक्षा भी चलती रही । मलयालम् पढने के बाद संस्कृत के सिद्धरूप, अमरकोश, बालप्रबोध आदि को उन्होंने कण्ठस्थ किया । बचपन से ही नाणु में एक असाधारण शक्ति विद्यमान थी जिससे शिक्षा में निपुणता प्राप्त करने में वे सब से आगे रहे ।[2] संस्कृत और मलयालम् के साथ उन्होंने तमिल का भी अध्ययन किया । तमिल को उन्होंने स्वयं ही पढा था और इस भाषा पर उनका अगाध पाण्डित्य भी रहा ।[3] भाषा के अध्ययन में बचपन में नाणु में अपने पिताजी का प्रभाव पडा था । संस्कृत की प्राथमिक शिक्षा के पश्चात् उन्होंने किसी विद्वान से संस्कृत के लघु काव्यों का अध्ययन शुरू किया । बचपन में वे गायों को चराते थे और साथ साथ पढे हुए संस्कृत श्लोकों को ज़ोर ज़ोर से दुहराया करते थे । आगे चलकर वे स्वयं संस्कृत श्लोकों की रचना भी करने लगे थे । इस प्रकार जो शिक्षा उन्होंने प्राप्त की थी अपने प्रयोग से वे उसका सही संवर्धन एवं पोषण करते थे ।

---

1. मूर्कोत्तु कुमारन - श्रीनारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम - पृ. 75
2. के.के.पणिक्कर - श्रीनारायण परमहंसन - पृ. 77-78
3. It is likely that Nanu, as Narayana Guru was called by his parents, learnt Tamil, Malayalam and Sanscrit from his father -

   - Dr.S.Omana -
   The Philosophy of
   Sree Narayana Guru -
   Doctoral Thesis Honoured by
   the University of Kerala - Pg. 3.

सन् 1877 में नाणु को करुनागप्पल्लि में पुतुप्पल्लिल भेजा गया । जहाँ पर उन्होंने कुम्मनपिल्लि रामन पिल्ला आशान के शिक्षण में संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त की ।[1] अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा नाणु अत्यन्त समर्थ दिखाई देते थे । पढाते समय ही सुनकर सारी बातें वे कण्ठस्थ कर लेते थे ।[2] कठिन से कठिन संस्कृत श्लोकों के अर्थ ग्रहण करने में भी नाणु अपनी असाधारण निपुणता दिखाते थे । इस असाधारण पाण्डित्य को देखकर रामन पिल्ला आशान ने नाणु को भी शिक्षक बनाने का निश्चय किया ।[3] इस प्रकार नाणु का पढना एवं पढाना साथ साथ चलता था । इसी समय नाणु पर असाधारण आध्यात्मिक प्रभाव भी होता था और इसे देखकर स्वयं रामन पिल्ला आशान ने उनकी विशेष साधना के लिए उन्हें एवं घरवालों को प्रेरित किया ।[4] सन् 1881 में अदर संबन्धी रोग के कारण उन्हें घर लौटना पडा और उनकी उच्च शिक्षा भी यहीं समाप्त हो गयी ।[5]

वैवाहिक जीवन :

श्रीनारायण गुरु के वैवाहिक जीवन के बारे में भिन्न भिन्न लेखकों के बीच में भिन्न भिन्न मत प्रचलित हैं । लेकिन सभी लेखकों ने समान

---

1. शान्ता. के - श्रीनारायण युग प्रभावम् - पृ. 20
2. मूर्कोत्तु कुमारन - श्रीनारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम् - पृ. 85
3. सानू. एम. के - नारायण गुरुस्वामी - पृ. 53
4. वेलायुधन कोट्टुकोयिक्कल - श्रीनारायण गुरुविन्टे जीवचरित्रम् - पृ. 54
5. पाणक्कर. के. के - श्रीनारायण परमहंसन - पृ. 94

रूप से स्वीकार किया है कि श्रीनारायण गुरु विवाह के अवसर पर स्वयं मौजूद नहीं थे । नारायण गुरु के अभाव में उनकी बहन से ही यह कार्य संपन्न कराया गया ।[1] उस समय नारायण गुरु की उम्र 28 वर्ष की थी ।[2] सभी लेखकों ने इस बात को एकमत होकर स्वीकार किया है कि श्रीनारायण गुरु अपनी पत्नी से पूर्ण रूप से विरक्त थे । लेकिन घरवालों के लिए वह महिला गुरुदेव की परिणीता थी ।[3] वह स्त्री उन्हीं के पिता की भानजी थी ।[4] इस प्रकार श्रीनारायण गुरु का वैवाहिक जीवन बिलकुल असाधारण था । सांसारिक सुखों से दूर रहने की आन्तरिक प्रेरणा के कारण वे हमेशा उस से दूर ही रहना चाहते थे । एक दिन की घटना है कि किसी व्यक्ति की प्रेरणा से श्रीनारायण गुरु ससुराल चले गये । लेकिन उन्होंने अन्दर प्रवेश तक नहीं किया और बाहर से ही वे यह कहने लगे कि जगत् में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी कार्य सिद्धि के लिए जन्म लेता है । मुझे और तुम्हें अलग अलग कार्य करना है, तुम्हें अपना कार्य करना है और मुझे अपना ।[5] यह कह कर वे वहाँ से चले गये । और विवाह बन्धन से भी उन्हें मुक्ति मिली । इस प्रकार लौकिक जीवन से अपना नाता तोडते हुए घर छोडकर वे अपने लक्ष्य की ओर शीघ्रातिशीघ्र बढने लगे । श्रीनारायण गुरु के परिव्राजक जीवन का आरंभ यहाँ से मानना होगा ।

---

1. सानू.एम.के - श्रीनारायण गुरु स्वामी - पृ. 76
2. मूर्कोत्तु कुमारन - श्रीनारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम् - पृ. 95
3. मूर्कोत्तु कुमारन - श्रीनारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम् - पृ. 95
4. "The relation was as neutral and mysterious as the zero that we have spoken of" - Nataraja Guru - The word of the Guru - Pg.26
5. पणिक्कर .के.के - श्रीनारायण परमहंसन - पृ. 100

परिव्रज्या :

परिव्राजक के रूप में नारायण गुरु ने लंबी यात्रायें की । केरल के समुद्र तटों और तमिल नाडु के ग्रामप्रदेशों में नारायण गुरु अधिक समय घूमते रहे । सत्य की तलाश उनका लक्ष्य था । इस प्रकार घूमते समय पेरूनेल्लीकृष्णन वैद्यर के साथ श्रीनारायण गुरु की मुलाकात हुई जो उनके जीवन की एक महान घटना है । वे संस्कृत के महान पण्डित, नाटककार एवं महान कवि भी थे । कृष्णन वैद्यर के द्वारा चट्टम्पिस्वामी से गुरु का परिचय हुआ । योग विधा से चट्टम्पिस्वामी पहले से ही परिचित थे और योग में श्रीनारायण गुरु को उन्होंने कुछ प्राथमिक अभ्यास भी दिया । योग में नाणु की अपार रुचि को देख कर चट्टम्पिस्वामी उन्हें अपना आचार्य तैकाट्टअय्याऊ नामक योगाचार्य के पास ले गये । श्रीनारायण गुरु के, गुरु के बारे में विद्वानों के बीच मतभेद है । कुछ लोग चट्टम्पि स्वामी को श्रीनारायण गुरु के गुरु मानते हैं कुछ लोग तैकाट्टअय्याऊ को । लेकिन श्रीनारायण गुरु ने किसी को गुरु नहीं माना है ।[1] सत्य का साक्षात्कार करना और मनुष्य की दुर्दशा को दूर करना इन दो महान लक्ष्यों के लिए श्रीनारायण गुरु आगे बढ़े । इसके लिए उन्हें अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पडा ।[2] नारायण गुरु की तपस्या का अन्तिम चरण मरुत्वामला में माना जा सकता है । वहाँ "पिल्लतटम" नामक गुफा में बैठकर उन्होंने तप किया । यहाँ श्रीनारायण गुरु को ज्ञानोदय हुआ याने सत्य का साक्षात्कार हुआ ।[3] फिर मरुत्वामला

---

1. "अपना गुरु ईश्वर और मनुष्य है" - नित्य चैतन्ययति - श्रीनारायण गुरु - पृ. 54
2. नटराज गुरु - दि वेड ओफ दि गुरु - पृ. 14
3. के. के. पणिक्कर - श्रीनारायण परमहंसन - पृ. 115

को छोडकर इधर उधर घूमने लगे । उस समय कन्दमूल खाकर ही वे जीवन बिताते थे और अधिकांश समय वन में ही रहते थे । इस प्रकार घूमते घूमते दक्षिण भारत के प्रमुख स्थलों और मंदिरों का उन्होंने दर्शन किया । बाद में नेय्यार नदी के किनारे नेय्यात्तिनकरा के पास अरुविपुरम पहूँचे और वहाँ रहने लगे । यहाँ रहकर वे स्वयं अपने को गुरु का रूप दे रहे थे । शिव, सुब्रह्मण्य, देवी आदि की स्तुति में लिखी गयी उनकी स्तोत्र कृतियों में श्रीनारायण गुरु की उस समय की मानसिक स्थिति हम पाते हैं । सन् 1907 में श्रीनारायण गुरु अरुविपुरम् को छोडकर वर्कला गिरि के एक उच्च स्थान में रहने लगे । उस समय के बीच श्रीनारायण गुरु ने भारत के विविध स्थलों में विशेष कर केरल और कर्णाटक में अनेक मंदिरों की प्रतिष्ठा की ।

रोग और महासमाधि :

श्रीनारायण गुरु अपने अंतिम समय में रोग से कुछ वर्ष पीडित रहे । अनेक प्रकार की चिकित्साओं का प्रयोग किया गया । अंत में वर्कला में रहकर चिकित्सा करने लगे । लेकिन कोई प्रयोजन नहीं हुआ । सितम्बर 1928 में उनका 73 वाँ जन्म दिन था । इसके ठीक एक हफ्ते के बाद वे महा समाधि को प्राप्त हुए । अपने अंतिम क्षणों में गुरुदेव ने योगवसिष्ठ को पारायण करने का आदेश दिया और मोक्ष प्राप्ति के भाग का पारायण सुनकर गुरुदेव ने देहत्याग किया । गुरुजी के कहे अनुसार शिवगिरि के सबसे उन्नत स्थान में विधिवत् उनका समाधि संस्कार किया गया । शिवगिरि में गुरुदेव का समाधि मण्डप आज भक्तों और तीर्थाटकों का केन्द्र है ।

श्रीनारायण गुरु का व्यक्तित्व

वैरागी व्यक्तित्व:

बचपन से ही नाणु का व्यक्तित्व प्रकृति की ओर मुडा हुआ था । प्रकृति उनकी सन्तत सहचरी थी । अपने यौवन में वे हमेशा एक तरह की मानसिक अस्वस्थता का अनुभव करते थे जो बाद में उनके दार्शनिक बनने का कारण बनी थी । घर या घर के लोग उन्हें अपनी ओर आकृष्ट न कर सके । धार्मिक एवं सौन्दर्यगत मूल्यों को वे महत्ता प्रदान करने वाले थे । समष्टिपरक सौन्दर्य के मूल्यों को भी वे महत्ता प्रदान करते थे । अस्वस्थ जीवन की गतिविधियों से वे ऊब गये थे । वे हमेशा अपने को अकेला रखना चाहते थे और हमेशा अपने गायों के साथ अकेला घूमा करते थे । बचपन में वे देर देर तक वृक्ष की शाखाओं में बैठे कीर्तन रचा करते थे और उन्हें सुन्दरता के साथ गाया भी करते थे । बागवानी में उन्हें बडा शौक था । बीजों के अंकुर और बेलों के फूलों और वृक्षों के फलों को देख कर वे आनंदित हो उठते थे । इस प्रकार सांसारिक सुखों से दूर रहकर वे प्रकृति मात्र का आस्वादन करते हुए बचपन से ही अनजाने में उस परम तत्व के सौन्दर्य का रस लेते रहे ।

जब नाणु बडे हुए उनका विवाह हो गया । लेकिन वैवाहिक जीवन में उनका मन नहीं रमा । जब से विवाह हुआ उन्होंने घर ही छोड दिया । अपने विवाहपाश को धैर्य के साथ काटते हुए वे अपने मुक्ति-मार्ग की ओर शीघ्र ही आगे बढे । उन के संपूर्ण जीवन में ब्रह्मचर्यव्रत का

विशेष महत्व रहा । उनका विचार था ब्रह्मचर्य ही सब से बडा व्रत है और उसका पालन सब से दुष्कर है । जो उसका पालन नहीं कर सकते केवल वे ही विवाह बन्धन में बाँधे जा सकते हैं ।[1] अपना घर और सांसारिक सुखों को छोडते हुए संसार में रहते हुए भी संसार से निर्लिप्त होकर गुरुदेव अपने जीवन बिताने लगे । उनके लिए दिन रात समान थे । धूप एवं वर्षा उन पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते थे । जनहीन टीलों पर, जंगलों में, चट्ठानों के बीच, समुद्रों के तीर पर और मंदिरों के प्रांगण में अकेले घूमते हुए उन्होंने अपना जीवन बिताया । वैरागी का यह व्रत ज्ञान-वर्धन में उनकी सहायता करता रहा ।

धार्मिकता :

नाणु का व्यक्तित्व बचपन से ही धर्म की ओर झुका हुआ था । अच्छे और बुरे के बीच का अन्तर वे जानते थे और अच्छे को बुरे से अलग देखने की आदत उनमें थी । नाणु के बचपन की एक घटना इसके लिए सुन्दर उदाहरण हैं ।[2] बचपन से ही नाणु के मन में दार्शनिक विचारों का

---

1. मूर्कोत्तु कुमारन - नारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम् - पृ. 96
2. एक दिन नाणु अपने सहपाठियों के साथ स्कूल से लौट रहे थे । मार्ग में उन्होंने एक सन्यासी को देखा और उनके साथी सन्यासी की ओर पत्थर फेंकने लगे । इस अधर्म को देखकर नाणु को बडा दुख हुआ । लेकिन कुछ करने की ताकत उनमें नहीं थी और वे ज़ोर ज़ोर से रोने लगे । इसे देख कर सन्यासी ने नाणु को सान्त्वना दी ।" - मूर्कोत्तु कुमारन - श्रीनारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम् - पृ. 73

प्रभाव था । नाणु के बचपन में उनके घर में एक मृत्यु हुई । अंतिम संस्कार के बाद दूसरे दिन नाणु घर से गायब हो गए । घरवालों ने समीप प्रदेशों में नाणु को ढूँढा, लेकिन वे कहीं न मिले । उस समय एक मज़दूर ने घरवालों को खबर दी कि नाणु कंटीली झाड़ियों के बीच अकेले बैठे हैं । जल्दी ही घरवाले उन्हें लेने गये । पूछने पर नाणु ने उत्तर दिया कि परसों यहाँ एक मृत्यु हुई तो तुम सब दुखी होकर रो रहे थे और कल सब हँसने खेलने लगे । यह देखकर मैं यहाँ आया ।

अन्धविश्वासों का विरोध एवं मानवता की ओर झुकाव :

बचपन से ही नाणु के मन में प्राणीमात्र के लिए विशेष आदर था । ईश्वर की तृप्ति के अर्थ में किए जाने वाले पूजा, नैवेद्य आदि में नाणु का कोई विश्वास नहीं था । उनके विचार में मनुष्य ही सब से श्रेष्ठ है । सभी प्रकार से मानव की उन्नति ही गुरु के जीवन का लक्ष्य रहा । इस के लिए उन्होंने खूब प्रयत्न भी किया । उनका विचार था आध्यात्मिक और भौतिक दोनों स्तरों में परिवर्तन अनिवार्य है । बचपन से ही नाणु के मन में इन विचारों का बीज अंकुरित था । जिस ने आगे चलकर एक विशाल वटवृक्ष का रूप लिया और समाज में फैले अन्धविश्वासों और अनाचारों को दूर करना उन्होंने अनिवार्य समझा । यह विचार बचपन से ही उनके मन में घर कर गया । "बचपन में उनके घर में पूजा के लिए फल और मीठे पकवान तैयार किये जाते थे

---

1. मूर्कोतु कुमारन - श्रीनारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम् - पृ. 74

जो पूजा के पहले ही नाणु खाया करते थे । घरवालों के पूछने पर नाणु का उत्तर था कि जब मैं उसे खाकर संतुष्ठ हो जाऊँगा तो भगवान भी स्वयं संतुष्ठ हो जायेंगे ।[1]

दयालुता :

गुरूदेव के व्यक्तित्व निर्माण में दया का प्रभाव महत्वपूर्ण है । बचपन में नाणु के मन में प्राणिमात्र के लिए जो दयाभाव जागता था वह आगे चलकर उनके महान व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया । जब नाणु विद्यार्थी थे तब उनके वासस्थान के समीप ही एक छोटा-सा कुत्ता रहता था । भोजन करते समय नाणु उस कुत्ते को कुछ भोजन दिया करते थे । जब छोटा कुत्ता खाने लगता तो वह बडा कुत्ता दौडते हुए वहाँ आकर छोटे कुत्ते को भगा कर उसका भोजन स्वयं खाया करता था । नाणु को उस छोटे कुत्ते पर अपार दया हुई । लेकिन बडे कुत्ते की ओर उनका किसी प्रकार का क्रोध भाव नहीं रहा और छोटे कुत्ते की ओर देखकर अपना दुख प्रकट करते थे ।[2] गुरु के कथन में महानुभूति उभरती है । बुराईयों को देखकर वे दुखी होते थे । प्राणिमात्र के प्रति उनके मन में दया भाव था ।

---

1. मूर्कोतु कुमारन - नारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम् - पृ. 71
2. "मुझे बडा दुख हो रहा है, लेकिन जब दूसरों का हृदय बुराइयों से भरे हुए हैं तो हम क्या कर सकते हैं " -
   के. के. पणिक्कर - श्रीनारायण परमहंसन - पृ. 92-93

अध्यापक वृत्ति :

श्रीनारायण गुरु के व्यक्तित्व में अध्यापक का रूप सब से महत्वपूर्ण है । आदि से लेकर अंत तक उनके व्यक्तित्व में अध्यापक का रूप अधिक से अधिक निखर आया है । एक अध्यापक के समान लोगों को समझा कर उनकी गलतियों को दूर करते हुए उन्हें धार्मिक पथ पर ले आने के कारण 1901 में 'State census Manual of Travancore' में श्रीनारायण को "गुरू" की उपाधि से संबोधित किया गया था ।[1]

नाणु की असाधारण प्रतिभा एवं अध्ययन चातुर्य को देखते हुए भी कुम्मनपिल्ली रामन पिल्ला आशान ने अध्ययन काल में ही उन्हें अध्यापक भी बनाया । यहीं से गुरुदेव के अध्यापक का व्यक्तित्व शुरू होता है । उच्च शिक्षा के बाद घर जाकर कटक्काऊर में मीरान कटउ के पास नाणु ने "कुटिपल्लिकूटम" शुरू किया जहाँ विद्यार्थियों को प्रारंभिक शिक्षा वे दिया करते थे । उसके बाद अंजुतेंग्ग़ और अपने देश में भी नाणु ने आचार्य वृत्ति स्वीकार की । उस समय भगवत्गीता का भी अध्यापन वे बराबर करते थे । इस आचार्य वृत्ति के साथ नाणु चट्टम्पि, नाणु आशान बन गये । इस प्रकार नाणु, नाणु आशान नाम से प्रसिद्ध हुए ।

---

1. Dr.S.Omana - The philosophy of Sree Narayana Guru pg.25

भक्त का रूप :

श्रीनारायण गुरु बचपन से ही बडे भक्त थे । इसी भक्ति ने उन्हें आगे चलकर बडा दार्शनिक बनाया । श्रीनारायण गुरु के व्यक्तित्व में उनका भक्त रूप या दार्शनिक रूप बडा महत्वपूर्ण है । ज्ञान की इच्छा बचपन से ही नाणु में रही थी । घर और घर से संबंधित कार्यों में उन्हें विरक्ति का भाव होता था । मन और शरीर को शुद्ध रखने को सदा वे उत्सुक थे । जप और मंदिर दर्शन उनके लिए नित्य कर्म था । कौमार दशा के बाद नाणु में असाधारण गुण विशेष दिखाई पडने लगे ।[1]

प्रारंभ में नाणु बडे विष्णु भक्त थे । श्रीकृष्ण उनके इष्ट देव थे । कहा जाता है कि बालकृष्ण बीच बीच में उनके सामने प्रकट होते थे ।[2] आगे चलकर वे सुब्रह्मण्योपासक बने । उस समय लिखी गयी कविताओं से मालूम होता है कि श्रीनारायण गुरु ने उस समय आत्मा, ईश्वर, माया आदि के बारे में मनन करना शुरू किया था । सृष्टि तत्व के विषय में भी वे विचार किया करते थे । इस प्रकार वे अपने भविष्य जीवन की तैयारी कर रहे थे । कहा जाता है कि आध्यात्मिक विषय में बचपन में ही उनकी रुचि थी । योगाध्ययन के प्रथम पाठ यम, नियम आदि गुरु के लिए जन्म सिद्ध थे । श्रीनारायण गुरु ने भक्ति के विविध तलों को समझ लिया था । उन्होंने सभी मानव के हृदयों में भी भक्ति के बीज बोना अनिवार्य समझा । इस प्रकार

---

1. मूर्कोत्तु कुमारन - नारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम् - पृ. 80
2. के. के. पाणिक्कर - श्रीनारायण परमहंसन - पृ. 93

जनहृदयों में भक्ति के बीज बोने के लिए सर्वप्रथम उन्होंने मंदिरों को अनिवार्य समझा । अतः सब से पहले अनेक मंदिरों की प्रतिष्ठा का कार्य गुरु ने किया । केरल और कर्नाटक में अनेक मंदिरों की प्रतिष्ठा उन्होंने की । उस समय सवर्ण जातियों के मंदिरों में प्रवेश करने की अनुमति निम्न जाति को न थी । लेकिन वहाँ निम्न जातियों के रुपये पैसे और अन्य चीज़ें स्वीकार किये जाते थे । भक्त नारायण गुरु से यह अत्याचार सहन नहीं किया गया । और उन्होंने सभी तरह के लोगों के लिए सदा खुले रहने वाले मंदिरों की स्थापना की एवं उनमें अलग अलग प्रतिष्ठायें भी की ।[1] मंदिरों की इन प्रतिष्ठाओं में भी भक्ति का क्रमिक विकास हम पा सकते हैं । सर्वप्रथम उन्होंने शिव, देवी आदि के स्वरूपों की प्रतिष्ठा की । उसके बाद उन्हें सगुण प्रतिष्ठायें निरर्थक दिखाई पड़ी और उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में एक पद आगे बढ कर "तत्वमसि" से आलेकित स्फटिक निर्मित फलकों की प्रतिष्ठा करना शुरू किया । अंत में उनकी भक्ति पूर्ण रूप से ज्ञान में परिवर्तित हुई जिस ने उनकी प्रतिष्ठाओं के विश्वास को और भी उन्नत बनाकर मानव मात्र के कल्याण की ओर बढाया । गुरुदेव की भक्ति की पराकाष्ठा यहाँ तक पहूँची कि मानव मात्र में ईश्वर का दर्शन करने का अभ्यास उस भक्ति में निहित हो गया ।

निर्भयता :

नाणु बचपन से ही निर्भय थे । किसी भी प्रकार का भय उनको नहीं था । उनकी निर्भयता को सिद्ध करने के लिए उनके बचपन की एक

---

1. बालराम पणिक्कर - श्रीनारायण विजयम - पृ. 198

घटना का विवरण यहाँ अप्रासंगत न होगा । चेंपषन्ति में एक मन्दिर था जहाँ पर लोग उत्सव के दिनों को छोडकर और किसी दिन जाते नहीं थे । एक बार नाणु को शीतला का ज्वर हुआ । शरीर भर में वेदना थी, नाणु ने रोग के बारे में घरवालों से नहीं बताया और एक दिन प्रातःकाल स्नान करके देवी मंदिर चले गये और वहीं अकेले रहने लगे । प्रतिदिन वे उस सुनसान मन्दिर में रहकर अपना नित्य कर्म किया करते थे । इस अवसर पर उस मंदिर में किसी वृक्ष पर बैठ कर मेलपत्तूर भट्टतिरी के वैराग्योत्पादक नामक ग्रंथ को उन्होंने कण्ठस्थ कर दिया । इस प्रकार इस देवी मन्दिर में ही रहकर अठारह दिन बिताये और उन्नीसवाँ दिन शीतला का शमन होने के बाद नाणु घर पहूँचे ।[1] इस प्रकार बचपन से ही वर्तमान निर्भयता एवं ईश्वर में विश्वास गुरुदेव की दार्शनिकता को मज़बूत बनाते रहे ।

समाज सुधारक :

श्रीनारायण गुरु के व्यक्तित्व का एक और महत्वपूर्ण पक्ष समाज सुधारक का है । समाज सुधारक के रूप में भारत में श्रीनारायण गुरु का स्थान अत्यन्त श्रेष्ठ है । समाज सुधार संबन्धी उनके विचारों की प्रासंगिकता सर्वमान्य हो चुकी है । धर्मगत एवं जातिगत अन्तर को समाप्त कर एक जाति - मानव जाति - की कल्पना एक महान, क्रान्ति की सूचना देती है । भारत के जनसामान्य की सामाजिक उन्नति के लिए शिक्षा का

---

1. मूर्कोतु कुमारन-श्रीनारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम् - पृ. 82

प्रचार उन्होंने अनिवार्य माना । अतः गुरु ने लोगों को शिक्षित बनाना चाहा । दलित एवं दमित जनता को एक सूत्र में बांधना चाहा । उस समय संस्कृत के ज्ञान के अभाव में शिक्षा पूरी नहीं हो सकती थी । इसलिए संस्कृत के अध्ययन पर भी उन्होंने बल दिया । साथ साथ गुरु ने अंग्रेज़ी के महत्व को भी अनदेखा नहीं किया । इस प्रकार गुरु ने सनातन भारत की परंपरा को स्थायी बनाने के लिए संस्कृत का ज्ञान और समस्त राज्यों से भारत के संबन्ध को बनाये रखने के लिए अंग्रेज़ी का ज्ञान अनिवार्य माना । अपने इस विचार को व्यावहारिक बनाने के उद्देश्य से गुरु ने सब से पहले आलवा में एक संस्कृत पाठशाला की स्थापना की और वर्कला में एक अंग्रेज़ी स्कूल की भी स्थापना की ।[1] भौतिक व अध्यात्मिक ज्ञान के समन्वय पर गुरु ने बल दिया । आध्यात्मिक दृष्टि के विकास के लिए श्रीनारायण गुरु ने शिवगिरि में एक ब्रह्मविद्यालय की स्थापना की । उसी समय उन्होंने एक ऐसे विद्यालय की भी स्थापना की जहाँ औद्योगिक प्रशिक्षण दिया जाता था ।[2]

इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में श्रीनारायण गुरु ने जो आदर्श सामने रखा वह अत्यन्त प्रासंगिक है । इसके अलावा उन्होंने समाज सुधार संबन्धी अनेक कार्य किये हैं । समाज में फैले हुए अनाचारों, अत्याचारों, बाह्याडम्बरों, उच्चनीच भावों, छूआ छूत और जाति भेद को दूर करने के लिए गुरुदेव ने अथक प्रयत्न किया ।

---

1. स्वामी धर्मानंद - श्रीनारायण गुरुदेवन - पृ. 122
2. स्वामी धर्मानंद - श्रीनारायण गुरुदेवन - पृ. 123 - 124

श्रीनारायण गुरु की जीवनी का सार्थक पक्ष उनकी विश्व मानवीय दृष्टि से जुडा हुआ है । गुरु ने समाज के निम्न वर्ग के उद्धार के लिए अथक परिश्रम किया था । हिन्दु धर्म के निम्न जाति के कहलाने वाले लोगों के प्रति उनके मन में बडी सहानुभूति थी । अतल में इन लोगों को मंदिरों में पूजा करने का अधिकार भी नहीं दिया गया था । सवर्ण जातियों के साथ मंदिर प्रवेश अवर्ण जाति के लिए निषिद्ध था । ऐसे अवर्ण जाति के लोगों के लिए मंदिरों की स्थापना करना उन में एकता और शैक्षिक उन्नति लाने के उद्देश्य से संघ की स्थापना करना आदि गुरु के जीवन के अतली पक्ष को उभारने वाले महान कार्य है । कबीर के समान सामाजिक सुधार का और यह कार्य संपन्न करने के साथ आर्थिक शोषण का विरोध भी गुरु का लक्ष्य रहा था । अंत में सारी मानवता के लिए एक ईश्वर, एक जाति और एक धर्म की कामना करते हुए गुरु विश्व मानव की श्रेष्ठतम संकल्पना तक बढ गये थे और इसी कामना में वे समाधिस्थ हुए थे ।

दूसरा अध्याय

संत कबीर और श्रीनारायण गुरू की रचनायें

दूसरा अध्याय

संत कबीर और श्रीनारायण गुरु की रचनाएँ

कबीर की रचनायें :

समाजोन्मुख दृष्टि को अपनाने के कारण कबीर ने पोथी ज्ञान को महत्व देना उचित नहीं समझा था । इसलिए कबीर की रचनायें मौखिक वाणी के रूप में समय समय पर अवतरित होती रहीं । दूसरे शब्दों में समाज की स्थिति, जनोद्धारण की आवश्यकतायें, धार्मिक रूढियों का खण्डन, दार्शनिक अवलोकन, ज्ञान की व्याख्या, लोकाचरण की आवश्यकतायें आदि के प्रसंग में कबीर अपने विचारों को अनर्गल रूप में प्रकट करते थे । काव्य कलेवर में प्रतिष्ठित होने वाले ये विचार भाव, अनुभूतियाँ कवि कर्म के सीमित दायरे से मुक्त होकर महा दार्शनिक, विचारक और समाज सुधारक के स्वरूप को उभारते हुए प्रतिष्ठित हुए ।

कबीर की वाणी को कण्ठस्थ करने वाले शिष्यों ने उसी को लिपिबद्ध किया था और इस तरह से लिपिबद्ध होनेवाले कबीर वचन आगामी पीढी के लिए सुरक्षित हो गये । वस्तुतः यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि कबीर ने पुस्तक रूप में कोई रचना नहीं की है । परन्तु मौखिक रूप में कबीर समस्त विचारों को जनमानस में अंकित करते थे । संभव है कि बाद के लोगों ने कबीर की वाणी अपनी वाणी में मिला डाली । इसलिए कबीर के नाम पर उपलब्ध सभी रचनायें प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती । उसमें से बहुत सारा अंश प्रक्षिप्त भी हो सकता है । इस कारण अनेक संग्रहों में कबीर वाणी के, दोहों के, पदों के विविध भेद मिलते हैं । परन्तु आकार की दृष्टि से प्रक्षिप्त होते हुए भी विचारों की एकता इन रचनाओं में परिलक्षित होती है । इन्हीं कारणों से यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि

कबीर के पदों की, दोहों की उलट बासियों की या भजनों की संख्या कितनी है, फिर भी कबीर की वाणी के संगृहीत रूप कबीर ग्रंथावली, बीजक आदि ग्रंथ आदि रचनाओं में दिखाई पडते हैं ।

प्रो. एच.एच. विल्सन् ने कबीर की केवल 8 रचनाओं के नाम दिये हैं । मिश्र बन्धुओं ने "हिन्दी नवरत्न" में कबीर की रचनाओं की संख्या पचहतर कर दी है । स्वर्गीय रामदास गौडे ने अपने ग्रंथ "हिन्दुत्व" में 71 पुस्तकों की एक लंबी सूची दी है । डा. रामकुमार वर्मा ने अपने "संत कबीर" की प्रस्तावना में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की सन् 1901 से लेकर सन् 1931 तक की खोज रिपोर्ट के आधार पर एक विशाल सूची प्रस्तुत की है । उनकी सूची में वस्तुतः 68 ही ग्रंथ है । श्री वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित कबीर सागर या बोध सागर में 40 ग्रंथों को दिया है ।

कबीर की रचनाओं की संख्या निर्धारित करने की बडी आवश्यकता है क्योंकि इसके बिना उनके साहित्य का अध्ययन संभव नहीं है । डा. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने बीजक और कबीर ग्रंथावली को प्रामाणिकता की दृष्टि से सब से अधिक महत्व दिया है । श्री पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव ने अपने आलोचनात्मक ग्रंथ "कबीर साहित्य का अध्ययन" में "बानी", "आदि ग्रंथ" और "बीजक" इन तीन ग्रंथों के संग्रह को ही मान्यता दी है । इनमें उनकी वाणी तीन भिन्न भिन्न लेखकों के मुख और लेखनी से होकर आई है । ये तीनों ग्रंथ एक ही ग्रंथ की तीन प्रतिलिपियाँ नहीं हैं, तीनों तीन परंपराओं के ग्रंथ है । संत साहित्य के मर्मर श्री परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर की रचनाओं में विशेषतः तीन ग्रंथों की ही चर्चा की है - कबीर ग्रंथावली, आदि ग्रंथ और बीजक । कबीर साहित्य का अध्ययन में बानी, आदि ग्रंथ और बीजक की पद संख्या इस प्रकार दिखाई गई है ।

बानी	आदिग्रंथ	बीजक
साखी-808	पद - 228	रमैंणी - 84
पद - 403	सलोकु - 238	साखी - 353
रमैंणी - 7		अन्यपद्य - 34
		शब्द - 115

बानी, आदि ग्रंथ तथा बीजक इन तीनों ग्रंथों में न तो पदों की संख्या एक सी है और न उनका वर्गीकरण और क्रम ।

कबीर की कृतियों का मुख्य प्रतिपाद्य आत्मा, ब्रह्म और जगत् से संबंधित होने पर भी कई जगहों पर अन्य अनेक विषयों की चर्चा भी मिलती है । ये रचनायें जन साधारण को ज्ञान प्रदान करके उनके जीवन को उज्ज्वल बनाने में सहायक हुई है । आध्यात्मिक विषयों पर बल देने पर भी कबीर दास ने भौतिक जीवन की उन्नति का मार्ग भी अपनी कृतियों के द्वारा प्रकट किया है । विषय प्रतिपादन को दृष्टि में रखकर कबीर की रचनाओं को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है -

1. दार्शनिक
2. भक्तिपरक
3. समाजपरक

दार्शनिक रचनायें :

कबीर ने अपनी रचनाओं में ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मोक्ष आदि का प्रतिपादन अधिकांश मात्रा में किया है । इन दार्शनिक रचनाओं के मुख्यतः तीन विभाग किए जा सकते हैं -

1. अद्वैत दर्शन संबन्धी
2. योग परक
3. सिद्धांत या वेदान्तपरक

1. अद्वैत दर्शन संबन्धी रचनायें :

कबीर श्रेष्ठ अद्वैतवादी थे । अद्वैत दर्शन संबन्धी अपने विचारों को उन्होंने अपनी कृतियों में कई स्थानों पर व्यक्त किया है । आत्मा और ब्रह्म के अद्वैत संबन्ध को स्थापित करते हुए कबीर दास जी बताते हैं कि जिस प्रकार पानी से ही बर्फ बनती है एवं बर्फ गल कर पुनः पानी के रूप में परिवर्तित हो जाती है उसी प्रकार जीवात्मा ब्रह्म का ही अंश है और मृत्यु को प्राप्त होने पर पुनः उसी परमात्मा में विलय हो जाती है ।[1] कबीर दास कहते हैं कि सब परब्रह्म से उत्पन्न हैं । पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, वायु के एकत्र मिलने पर मनुष्य का रूप बनता है । शरीर के नष्ट हो जाने पर ये पंच तत्व पुनः उसी परब्रह्म में समा जाते हैं और फिर मनुष्य का कुछ चिह्न संसार में नहीं रह जाता । इस तत्व को कबीर दास ने व्यक्त किया है ।[2] उनके मत में सृष्टि के आदि, मध्य और अंत में सर्वत्र परमात्मा का ही अस्तित्व है । आत्मा और ब्रह्म की अद्वैतता को सिद्ध करने के लिए उन्होंने दृष्टान्त तत्व को भी प्रस्तुत किया है । कबीर कहते हैं कि आत्मा और ब्रह्म में कोई अंतर

---

1. पाणी ही तैं हिम भया, हिम है गया बिलाइ ।
   जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाइ ।
   कबीर ग्रंथावली - साखी भाग - पश्चा कौ अंग - 17
2. जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहरि भीतरि पांनी ।
   फूटा कुंभ जल जलहि समांनां, यह तत कथौ गियानी ।।
   कबीर ग्रंथावली - पदावली भाग - 44

नहीं । समस्त संसार एक ही मिट्टी से बना है, सृष्टि निर्माता ब्रह्म रूपी कुंभकार ने उसी मिट्टी के विविध आकारधारी मनुष्य रूपी घड़े निर्मित किए है ।[1] बिम्बों के द्वारा भी कबीरदास जी ने अद्वैत सत्य का समर्थन किया है । वे कहते हैं कि जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्ब है उसी प्रकार इस संसार में ब्रह्म का प्रतिबिंब है ।[2] अन्योक्ति के माध्यम से भी कबीरदास ने अद्वैत सिद्धांत को व्यक्त किया है ।[3] भ्रम या माया के कारण ब्रह्म और जीव भिन्न रहते हैं । भ्रम के नष्ट हो जाने पर जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है । जिस भाँति बिम्ब प्रतिबिम्ब एक हो जाते हैं ; कुंभ के भीतर और बाहर का जल मायारूपी कुंभ के फूटते ही एक हो जाता है उसी प्रकार भ्रम के नष्ट हो जाने पर जीव परमात्मा में लीन हो जाता है ।[4] इस अवस्था में मैं तू अहं परं का भेद नष्ट हो जाता है । समस्त प्राणिमात्र के हृदय में एक ही प्रभु विद्यमान है । जिस प्रकार नाले का जल गंगा की पवित्र धारा में मिलकर एक हो जाता है उसी प्रकार आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार हो जाने से दोनों एकमेक हो जाते हैं । कबीर दास जी ने आत्मा और परमात्मा को बूँद और जल कहा है ।[5] उन्होंने अपनी कृतियों में यह सिद्ध किया है कि सब कुछ ब्रह्म ही है । वह नाना रूप में स्वयं सृष्टि का संचालन

---

1. सोंह हंसा एक समान, काया के गुण भानहि भान ।
   माटी एक सकल संसारा, बहु विधि भाँडे धड़ै कुंभारा ।। पदावली भाग-53
2. ज्यूं दर्पण प्रतिबिम्ब देखिए, आप दवांसू सोई ।
   संसौ मिट्यौ एक कौ एकै, महा प्रलै जब होई ।। -पदावली - 54
3. कबीर ग्रंथावली - पदावली भाग - 64
4. ज्यों बिम्बई प्रतिबिम्ब समानां, उदिक कुंभ बिगरानां ।
   कहै कबीर जानि भ्रम भागा, जीवहिं जीव समानां ।। पदावली - 179
5. कबीर ग्रंथावली पदावली - 258

करता है । दान, पुण्य, जप तव, तीर्थ व्रतादि में भी वही है ।[1] उन्होंने वेदान्तियों के समान जलतरंग न्याय द्वारा भी आत्मा परमात्मा के संबन्ध को व्यक्त किया है । जिस भाँति लहर जल से उत्पन्न होकर उसी में समा जाती है उसी प्रकार हम परमात्मा के स्वरूप में लय हो जायेंगे ।[2] कबीर का कहना है कि ब्रह्म साक्षात्कार ही सभी का लक्ष्य है । वे बताते हैं कि जिस भाँति पुष्पों के मध्य सुगन्ध का निवास है उसी प्रकार प्रत्येक के हृदय में ईश्वर का निवास है । इसलिए ब्रह्म साक्षात्कार के लिए अपने ही अन्दर में वास करने वाले ब्रह्म को पहचान लेना चाहिए ।

2. योगपरक रचनाएँ :

कबीर दास ने अपनी कृतियों में अनेक स्थानों में योग के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है । यौगिक क्रियाओं के द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार का वर्णन कबीर दास जी ने यत्र-तत्र किया है । कुण्डलिनी योग का सुन्दर प्रतिपादन कबीर दास जी के कृतियों में मिलता है । कुण्डलिनी जागृत होने पर सुषुम्ना के भीतर स्थित ब्रह्म नाडी षड्चक्रों से होती हुई सहस्रार में प्रवेश करती है ।[3] योगियों की यह मान्यता है कि ब्रह्माण्ड में सर्वत्र अनहद नाद होता रहता है और यही अनहद नाद "पिण्ड" - शरीर में भी होता रहता है । योगियों की इस मान्यता को कबीर दास जी ने प्रस्तुत

---

1. कबीर ग्रंथावली - पदावली - 336
2. जैसे जलहि तरंग तरंगनी, ऐसैं हम दिख लावहिंगे ।
   कहै कबीर स्वामी सुखसागर, हंसहि हंस मिलावहिंगे ।। -पदावली भाग - 150
3. पंषि उडानीं गगन कूं, उडी चढी असमान ।
   जिहि सर मंडल भेदिया, सो सर लगा कान - साखी भाग-पश्या कौ अंग - 21

किया है ।[1] कुण्डलिनी योग का सजीव वर्णन कबीर दास जी ने अनेक स्थलों पर किया है ।[2] उलट बाँसी के माध्यम से योगसाधना की विविध प्रक्रियाओं को पार कर उन्होंने प्रभु प्राप्ति का ढंग बताया है ।[3] यौगिक प्रक्रिया के द्वारा ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है । तब कच्चे मांस के समान अशुद्ध शरीर विशुद्ध कंचन के रूप में परिवर्तित हो जाता है ।[4]

हठयोग का वर्णन करते हुए कबीर दास जी बताते हैं कि योगी समस्त संसार से पृथक आचरण करने वाला व्यक्ति होता है । उसका तो सुद्रा, इडा, पिंगला, शृंगी और अनहद नाद से अटूट संबन्ध है ।[5] सुषुम्ना के माध्यम से कुण्डलिनी का विस्फोट हो जाने पर अमृत स्रवण के साथ साथ शरीर के रोम रोम से "अहं ब्रह्मास्मि" की ध्वनि उठती है - इसे अनहद नाद कहते हैं ।[6] मदिरा खींचने की प्रक्रिया के रूपक द्वारा कबीर दास जी ने हठयोग साधना से ब्रह्मप्राप्ति का मार्ग व्यक्त किया है ।[7] कबीर दास ने नाथपंथी योग साधना का संपूर्णत: वर्णन किया है । योग साधना के अनहद नाद, गगन, त्रिकुटी, सींगी, गगन-माठी, रसचर्वणा सबका वर्णन उन्होंने किया

---

1. कबीर सबद सरीर में, बिनि गुण बाजै तंति ।
   बाहरी भीतरि भरि रहा, ताथैं छूटि भरंति -
   साखी सबद कौ भंग - ।
2. ××××× पदावली भाग - राग गौडी - 4, 7, 8, 18
3. ××××× पदावली भाग - राग गौडी - 12
4. पदावली - 17
5. पदावली भाग - 29
6. पदावली भाग - 70
7. पदावली भाग - 72, 157

है ।[1] खेचरी मुद्रा पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया है ।[2] कबीर दास जी ने योग साधना पर पर्याप्त पद रचना की है किन्तु उन्होंने विशेष बल मन की साधना पर दिया है । उनके अनुसार योगी को काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, पांचों विकारों से मुक्त होना चाहिए ।[3] प्राणायाम, ध्यान आदि से मन को निश्चल बनाने का प्रयत्न याने मन को विकार शून्य बनाने की विधि भी कबीरदास ने बतायी है ।[4]

सिद्धांतपरक कृतियाँ :

कबीर दास की कृतियों में आत्मा, ब्रह्म, जीव, जगत, माया, मोक्ष, ज्ञान आदि के सिद्धांतों का प्रतिपादन स्थान स्थान पर हुआ है । ब्रह्म साक्षात्कार ही जीव का आत्यन्तिक लक्ष्य है । इसका समर्थन कबीर दास जी ने किया है । आत्मा और परमात्मा के मिलन का सुख

---

1. पदावली भाग - 153
2. पदावली भाग - 206
3. पदावली भाग - 206
4. चित तरउबा पवन बेदा, सहज भूला बांधा ।
   ध्यानं धनक जोग करम, ग्यानं बानं सांधा ।।
   वर चक्र कंवल देधा, जारि उजारा कीन्हां ।
   कामं क्रोध लोभ मोह, हाकि स्यावज दीन्हां - पदावली भाग 210

अवर्णनीय है । वे कहते हैं कि यह मिलन सुख अनुभव से ही प्राप्य है ।[1] जीवात्मा के लिए संसार परदेश है । वास्तविक घर ब्रह्म के पास है । कर्म के व्यापार करने के लिए जीव यहाँ आते हैं । इस कर्म के क्रय-विक्रय व्यापार को शीघ्र करके अपने घर के मार्ग में प्रवृत होना चाहिए ।[2] ब्रह्म के स्वरूप के बारे में कबीर कहते हैं कि न तो जिस के मुख है, न भाल और न जिसका कोई सौन्दर्य और आकार है, जो सुमन सुगन्ध से भी पतला है वह ऐसा अनुपम तत्व है ।[3] कबीर कहते हैं कि अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुखी कर देने से अपने वास्तविक रूप का दर्शन हो जाता है । वे कहते हैं कि समस्त सृष्टि के अणु अणु में ईश्वर की कान्ति है । लेकिन अज्ञान के कारण यह तथ्य लोग नहीं समझते । जिस प्रकार काष्ट में अग्नि का वास है उसी प्रकार

---

1. अमृत बरिसै हीरा निपजै, घटा पड़ै टकसाल ।
   कबीर जुलाहा भया पारषू, अनभै उतर्या पार ।
   साखी - परचा कौ अंग - 47
2. इत प्रधर उत धर, बण जग आये हाट ।
   करम किरांणां बेचि करि, उठि ज लागे बाट ।।
   साखी भाग - चितावणी कौ अंग - 57
3. जाकै मुह माथा नहीं, नहीं रूपक रूप ।
   पुहुप वास थैं पतला, ऐसा तत अनूप ।।
   साखी भाग - जीव पिछांणन कौ अंग - 4

ब्रह्म सर्वत्र है । "काष्टवह्निवन्याय" द्वारा ब्रह्म स्वरूप को उन्होंने व्यक्त किया है ।[1] संसार में ऐसा कुछ भी तो नहीं है जो स्थिर है । कबीर के अनुसार संसार नश्वर है । केवल ब्रह्म ही चिरन्तन और सत्य है ।[2] यह संसार जल की बूँद के समान है जिसे उत्पन्न होते और नष्ट होते देर नहीं लगती ।[3] उन्होंने संसार को स्वप्न तुल्य बताकर ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या तत्व की पुष्टि की है ।[4] कबीर दास इस संसार को भ्रम मानते हैं । वे कहते हैं कि जिस प्रकार अन्धकारमय रात्रि में प्रकाश के अभाव में भयरूपी भुजंग डस लेता है और उस भयग्रस्त व्यक्ति की किंचित भी सहायता अगणित नक्षत्र नहीं कर पाते उसी प्रकार मिथ्या संसार में व्यक्ति व्यर्थ भ्रम के भुजंग से डसा जा रहा है ।[5]

कबीरदास ने माया संबन्धी अपना विचार अत्यन्त सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है । माया के कारण ही जीव अपना वास्तविक स्वरूप नहीं पहचानता है ।

---

1. कष्टै कष्ट अग्नि पर जरई, जाटे दार अग्नि सभि करहं ।
   ज्यूं रामं कहे ते रामै होई, दुख क्लेश धालै सब खोई ।
   रमैणी भाग - दुपदी रमैणी
2. पदावली भाग - 103
3. पदावली भाग - 104
4. रमैणी भाग - बड़ी अष्टपदी रमैणी
5. रमैणी भाग - दुपदी रमैणी

अतः इस माया को हटाना अनिवार्य है । माया के विविध स्वरूप और स्वभाव को कबीरदास ने साखी में "माया कौ अंग" में व्यक्त किया है । माया को हटाने से जीव अपना वास्तविक स्वरूप समझ लेता है । माया को हट जाने पर आत्मा और परमात्मा में कोई भिन्नता नहीं दिखाई पडती । इस के लिए सब से पहले काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, इन पाँचों विकारों से मन को दूर रखना चाहिए ।[1]

कर्मफल को कबीर दास ने अपनी कृतियों में व्यक्त किया है । कबीर का दृढ विश्वास है कि कर्म सूत को कातकर ब्रह्म की प्राप्ति संभव है ।[2] मनुष्य जीवन में कर्म के अनुसार ही फल मिलता है । अच्छा कर्म करने से अच्छा फल मिलेगा । बुरा कर्म करने से बुरा फल याने दुख मिलेगा । तो दुख मिलने से पछताने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि यह अपना कर्मफल है ।[3] अतः कबीरदास उपदेश देते हैं कि सत् कर्मों से अपना परलोक संवारना चाहिए क्योंकि ब्रह्म से अपने कर्मों का उत्तर देना पडेगा ।[4]

कबीरदास जी ने अपनी कृतियों में ज्ञान की महत्ता का सजीव वर्णन किया है । उन्होने ब्रह्म ज्ञान को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है । ब्रह्म ज्ञान से विषय वासना दूर हो जाती है ।[5]

---

1. साखी भाग - विचार कौ अंग - 10
2. साखी भाग - मन कौ अंग - 3
3. करता था तौ क्यूं रहा, अब करि क्यूं पछताय ।
   बोवै पेड बबूल का, अब कहां तैं खाय - साखी भाग - मन कौ अंग - 26
4. पदावली भाग - राग गौडी - 102
5. समन्दर लागी आगी, नदियाँ जलि कोइला भई ।
   देखि कबीरा जागि, मंछी रूखां चढि गई - साखी भाग -ग्यान विरह कौ अंग -10

2. भक्तिपरक रचनायें :

कबीरदास की भक्तिपरक रचनाओं में ईश्वर की महिमा और भक्ति की महत्ता का वर्णन मिलता है । अनेक प्रकार से उन्होंने भक्ति की महता को सिद्ध किया है । उनके अनुसार ब्रह्म की प्राप्ति के लिए भक्ति अनिवार्य है । निस्पृह, निष्काम एवं निराश्रय भक्त को ही प्रभु अपनाते हैं ।[1] भक्ति में विश्वास की अनिवार्यता पर कबीर दास बल देते हैं । उनके अनुसार प्रभु भक्ति ही श्रेष्ठता की कसौटी है जिस पर कोई कुमार्गी मनुष्य खरा नहीं उतर सकता । प्रभु भक्ति की कसौटी पर तो वही खरा उतरता है जो जीवनमुक्त की अवस्था में रहता है । कबीर दास जी बताते हैं कि जो व्यक्ति प्रभु भक्ति का आश्रय लेते हैं वे भक्ति का मधुर फल प्राप्त करते हैं । कबीरदास जी अपनी कविताओं के ज़रिए व्यक्त करते हैं कि भक्ति से समस्त कामनायें स्वयं सफलीभूत हो जाती हैं ।[2] भक्ति क्या है, भक्ति का स्वरूप क्या है, भक्ति किस प्रकार करना है, मानव जीवन में भक्ति की अनिवार्यता क्यों हैं ? इन सभी बातों का अत्यन्त सुन्दर वर्णन कबीरदास ने किया है । भक्ति की महत्ता का विशद वर्णन करके कबीरदास जी ने अपने पदों और दोहों के ज़रिए भक्ति की ओर मानव का ध्यान आकर्षित करने का सफल प्रयत्न किया है । भक्तों की महिमा की ओर भी वे प्रकाश डालते हैं । वे कहते हैं कि माया भक्त के सम्मुख दासी के समान

---

1. चतुराई हरि नां मिलै, ए बातों की बात ।
   एक निस्प्रेही निरधार का, गाहक गोपीनाथ - साखी भाग भवे कौ अंग - 22
2. अब मोहि राम भरोसा तेरा, और कौन का करौं निहोरा ।
   जाके राम सरीखा साहिब भाई, सो क्यूं अनंत पुकारन जाई ।
   जा सिरि तीनि लोक कौ भारा, सो क्यूं न करै जन की प्रतिपारा ।
   कहै कबीर सेवौ बनवारी, सींचौ पड़े पीवै सब डारी ।। पदावली भाग - 118

पड़ी रहती है । समस्त पृथ्वी का राज एवं आठ सिद्धियों तथा नव निधियों का सुख उन्हें सहज प्राप्त है ।[1]

भक्ति के भिन्न अंगों पर भी कबीर ने अपनी कृतियों द्वारा प्रकाश डाला है । भक्ति में नामस्मरण की महता को कबीर दास ने अनेक स्थलों में व्यक्त किया है । वे बताते हैं कि रामनाम रूपी नालिका के द्वारा हृदय रूपी क्षेत्र में प्रभु भक्ति का भरपूर बीज बोना चाहिए । ऐसा करने से फिर चाहे बाद में सूखा भी रहे , वर्षा न भी हो, तो प्रभु भक्ति रूपी फसल का फल अवश्य प्राप्त होगा ।[2] नामस्मरण के द्वारा इस भव सागर को पार करने का सरल मार्ग कबीर दास ने बताया है ।[3] उन्होंने अपनी कविताओं में निर्गुण भक्ति का ही वर्णन किया है । सगुण भक्त को वे कभी नहीं मानते हैं । भक्ति में भक्त और भगवान एक हो जाते हैं । इस एकरसता में ही भक्ति का साफल्य है । यहाँ कबीर दास ने प्रेमा भक्ति के द्वारा भक्त और भगवान की एकरसता का सजीव वर्णन किया है । पति पत्नी के दाम्पत्य प्रेम के नमूने से आत्मा परमात्मा के साक्षात्कार का साकार वर्णन कबीर दास ने किया है । इस प्रकार भक्ति की ओर जन-साधारण का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न कबीर दास ने किया है ।

कबीर की मान्यता है कि व्यक्ति किसी भी सामाजिक स्थिति में क्यों न हो, उसे ईश्वर की साधना एवं भक्ति का पूर्ण अधिकार है । इसीलिए उन्होंने

---

1. पदावली भाग - 269
2. रामं नामं करि बोहंडा, बांही बीज अधाइ ।
   अति कालि सूका पड़ै, तो निरफल कदे न जाइ - साखी भाग -बेसाख कौ अंग-4
3. पदावली भाग - 131, 193

सामाजिक दृष्टि से निम्न से निम्नतम व्यक्तियों के कार्यों का संबन्ध भक्ति से जोडा है ।[1] इस प्रकार भक्ति का किवाड कबीर दास ने सबके लिए खोला है ।

3. सामाजिक कृतियाँ :

सामाजिक रचनाओं के अंतर्गत वे कृतियाँ आती हैं जिन में उन्होंने वर्ण व्यवस्था, अन्धविश्वास, आदि का विरोध किया है । सुधारात्मकता इन कृतियों का मुख्य स्वर है । समष्टिगत एकता पर बल देते हुए इनमें कबीर का कहना है कि सभी के शरीर एक ही साँचे में ढले हुए हैं, समस्त जीवों का मूल उत्स एक ही है । उच्चता का गर्व करने वाले ब्राह्मण ने भी शेष लोगों के समान ही मातृ गर्भ से जन्म लिया है, अन्य मार्ग से नहीं । इस प्रकार दृढ स्वर में कबीर कहते हैं कि कोई नीच नहीं है ।[2] ब्राह्मण और शूद्र में कबीर दास ने किसी प्रकार का भेद भाव नहीं देखा । वे कहते हैं कि मनुष्य एक ही वीर्य की बूँद से उत्पन्न है । सब समान रूप से मल मूत्र का त्याग करते हैं । सब में एक ही चर्म और समान माँस है । सब का जन्म परम ज्योति स्वरूप ब्रह्म से ही है फिर ब्राह्मण और शूद्र का अन्तर संभव नहीं । मिट्टी से सब के शरीर की उत्पत्ति समान भाव से होती है । इस प्रकार कबीर दास ने नाम रूप के भेद भाव को निरर्थक और मिथ्या स्थापित करके उच्च नीचता के भेद भाव का खण्डन किया है ।

---

1. पदावली भाग - 89
2. उतपति प्यदं कहां थैं आया, जा धरी अरू लागी माया ।
   नहीं को ऊँचा नहीं को नीचा, जाका प्यंड तहि का सींचा ।।
   पदावली भाग - 41

हिन्दू और मुसलमानों के बीच के भेद भाव को दूर करके हिन्दु मुस्लिम एकता के लिए कबीरदास ने प्रयत्न किया । वे कहते हैं कि हिन्दू और मुसलमान सब एक हैं । एक ही प्रभु के लिए उपासना की विविध पद्धति होती है । कबीर कहते हैं कि मंदिर और मस्जिद न होने पर भी सर्वशक्तिमान प्रभु का शासन होता है । अतः हिन्दू और मुसलमान दोनों को व्यर्थ अपने बीच भेद की दीवार खडी कर त्रुटिपूर्ण आचरण करने की कोई आवश्यकता नहीं । सब अपने अपने उचित मार्ग का अवलंबन कर सकते हैं । हिन्दू और मुसलमान दोनों का निर्माता एक ही ब्रह्म है ।[1]

समाज में प्रचलित छुआछूत के प्रति अपना घोर विरोध कबीरदास ने व्यक्त किया है । खान-पान में छुआछूत रखने वालों से कबीरदास बताते हैं कि ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ मिथ्या तत्व नहीं है । माता पिता तथा अन्य स्नेही सब झूठे हैं । झूठे प्रलोभनों में फँसे हुए हैं । अन्न पानी और इसको बनाने वाला सभी तो मिथ्या है । यह भोजन परोसा भी मिथ्या चमचे से है और जिस से वह लिया है, सब ही तो झूठ है ।[2]

वर्ग भेद की खहि को मिटा कर सब को एकता के स्वर्ण सूत्र में बाँधने का महान कार्य कबीर दास ने किया । वे कहते हैं कि इस सृष्टि का आदि नियामक ईश्वर ही है । राजा और रंक, राजा और प्रजा सब उसी की ही सृष्टि है । हम सब में एक ही रक्त संचारित होता है और एक ही प्राणतत्व विद्यमान है । सब मातृ गर्भ में दस मास तक रहे हैं । हमको एक ही शक्ति रूपी माता ने

---

1. पदावली भाग - 58
2. पदावली भाग - 251

जन्म दिया है । फिर वर्ग भेद की बात निरर्थक है ।[1] कबीर का विचार है ईश्वर के सामने प्रत्येक जीव और प्रत्येक मनुष्य समान है । हम सब एक ही ख़ुदा के बन्दे हैं , यह जानकर दूसरों से मनमाना व्यवहार नहीं करना चाहिए । हम सब जीव एक ही मृत्तिका से निर्मित पात्र है, सब में ब्रह्म की समान स्थिति है, अतः सब को समान समझना चाहिए ।[2]

अहिंसा का दिव्य सन्देश कबीर दास की पदावली और साखी में हम पा सकते हैं । रसना के स्वाद के लिए जीव की हत्या करने वाले काज़ी के ढोंग पर कबीर दास जी ने व्यंग्य किया है ।[3] सब ईश्वर की सन्तान है । वे बताते हैं कि इस परम तत्व को पूर्ण रूप से विस्मृत करके काज़ी और मुल्ला जीवन वध के लिए कटार हाथ में लेते हैं ।[4] मुसलमान लोग ईश्वर का नाम लेकर जीव को मारते हैं और "हलाल" की इस रीति को श्रेष्ठ समझते हैं । जीव हत्या की इस विशेष रीति पर कबीर दास ने व्यंग्य किया है ।[5] कबीर का विचार है कि सभी जीव जालों को सहजीवि समझकर दया दिखाने से ईश्वर संतुष्ट हो जायेंगे ।[6] समाज में प्रचलित

---

1. रमैणी भाग - चौपदी रमैंणी
2. पदावली भाग - 255, 259
3. साखी भाग - सांच कौ अंग - 6
4. काली मुलां भमियां, चल्या दुनीं कै साथि ।
   दिल थैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि - साखी भाग-सायं कौ अंग -6
5. जोरि करि जिबहै करैं, कहते हैं ज हलाल ।
   जब दफ्तर देखैगा दई, तब हैगा कौंण हवाल ।
   साखी भाग - सांच कौ अंग - 8
6. " " - 9

अन्धविश्वासों, कुरीतियों और बाह्याडम्बरों का विरोध कबीर दास ने अपनी कृतियों में किया है । भक्ति के नाम पर पूजा में बलि देने की प्रथा का विरोध कबीर दास ने किया है ।[1] बहुदेवोपासना पर व्यंग्य करते हुए कबीर दास जी बताते हैं कि संसार में जितने मनुष्य हैं उतनी ही शालिग्राम की मूर्तियाँ हैं ।[2] मूर्तिपूजा के विरोध पर कबीर दास जी ने अनेक साखियाँ लिखी हैं ।[3] बाह्याडम्बरों पर विरोध प्रकट करते हुए कबीर दास जी बताते हैं कि जप, तप, तीर्थ, व्रत सब निस्सार दृष्टिगत होता है । इनके ऊपर आश्रित व्यक्ति अंत में उसी प्रकार निराश होता है जैसे तोता सेंवल के फूल के ऊपर आश्रित रहकर निराश होता है ।[4] छापा, तिलक, माथा, आदि बाह्य आडम्बरों पर कबीर दास जी ने घोर व्यंग्य किया है ।[5] इस प्रकार कबीर दास जी ने अपनी कृतियों के द्वारा सच्ची मानवता का पथ प्रशस्त किया । इस के लिए सत्य, विनम्रता, सेवा भाव आदि मानवीय गुणों की अनिवार्यता की ओर भी कबीर दास जी ने इशारा किया । सत्य की महत्ता को सिद्ध करते हुए कबीर दास जी बताते हैं कि जिनका हृदय सच्चा नहीं है उन्हें ईश्वर कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता ।[6] विनम्र भाव और अहं का विसर्जन हो जाने पर प्रभु प्राप्ति हो जायेगी । कबीर दास जी बताते हैं कि जिस प्रकार मार्ग में पडा रोडा सब का पदाघात

---

1. साखी भाग - सांच कौ अंग - 14
2. साखी भाग - भ्रम बिधौंसण कौ अंग - 5
3. साखी भाग - भ्रम बिधौंसण कौ अंग - 1, 2, 3, 4, 6, 7.
4. साखी भाग - भ्रम बिधौंसण कौ अंग - 5, 9, 10.
5. साखी भाग - भेष कौ अंग - 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10.
6. भेष सबूरी बाहिरा, क्या हज काबै जाइ ।
   जिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनकौं कहां खुदाई - सांच कौ अंग - 11

चुपचाप सहता है उसी प्रकार बिनीत भाव से सब सह लेना सीखना चाहिए ।[1]
असीम धन का मोह मानव को कुकर्म की ओर आकर्षित करता है मानव जाति का कल्याण और समाज की उन्नति के लिए धन की अमित लालसा को छोड देने का उपदेश कबीर दास जी ने दिया है ।[2]

श्रीनारायण गुरु की रचनायें :

श्रीनारायण गुरु की कृतियाँ विषय और प्रतिपादन दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं । ये कृतियाँ संस्कृत, मलियालम और तमिल में लिखी गयी हैं । श्रीनारायण गुरु की 57 कृतियाँ अभी तक प्राप्त हुई है -

1. विनायकाष्टकम्
2. वासुदेवाष्टकम
3. गुहाष्टकम
4. षड्मुखस्तोत्रम्
5. बाहुलेयाष्टकम्
6. षडमुखदशकम्
7. सुब्रह्मण्यकीर्तनम्
8. नवमंजरी
9. भद्रकालीयष्टकम्
10. देवीस्तवम्

---

1. साखी भाग - जीवन मृतक कौ अंग - 12, 13, 14.
2. मधुभाषी धन संग्रहै, मधुवा मधु ले जाइ रे ।
   गयौ गयौ धन मूढ जनां, फिर पीछैं पछताई रे ।। पदावली भाग - 127

11. मण्णान्तलादेवीस्तवम्
12. कालीनाटकम
13. चिदम्बराष्टकम्
14. शिवप्रसाद पंचकम्
15. सदाशिव दर्शनम्
16. शिव शतकम
17. परमशिव चिन्ता दशकम्
18. अर्धनारीश्वर स्तवम्
19. षाडमातुरास्तवम्
20. मननातीतम्
21. यिज्जडचिन्तनम्
22. कुण्डलिनी पाट्ट
23. पिण्डनन्दी
24. इंद्रिय वैराग्यम्
25. अनुभूति दशकम्
26. प्रपंचशुद्धि दशकम्
27. प्रपंचतृष्टि (शिवस्तवम्)
28. अद्वैत दीपिका
29. आत्मोपदेश शतकम्
30. जननी नवरत्न मंजरी
31. ब्रह्मविद्या पंचकम्
32. मुनिचर्या पंचकम्
33. जीवकारुण्य पंचकम्
34. अनुकम्पा दशकम्

35. दतापहारम्
36. तिरुकुरल
37. ईशावास्योपनिषत्
38. जातिनिर्णयम्
39. जाति लक्षणम्
40. दर्शन माला
41. दैवदशकम्
42. अरिव
43. आश्रमम्
44. निवृत्ति पंचकम्
45. श्लोकत्रयी
46. वेदान्तसूत्रम्
47. विष्णुवष्टकम्
48. धर्मम्
49. ओरुतमिल श्लोकम्
50. यिज्जड चिन्तनम् §गद्य§
51. दैवचिन्तनम् । §गद्य§
52. दैवचिन्तनम् ।। §गद्य§
53. कोलतीरेशस्तवम्
54. स्वानुभव गीति
55. गद्य प्रार्थना
56. आत्म विलासम् §गद्य§
57. तेवार पतिकगंल्

विषय को दृष्टि में रखते हुए मोटे तौर पर श्रीनारायण गुरु की कृतियों को चार विभागों में बाँटा जा सकता है ।

1. दार्शनिक कृतियाँ
2. भक्तिपरक कृतियाँ
3. सामाजिक कृतियाँ
4. अनूदित कृतियाँ

1. दार्शनिक कृतियाँ :

श्रीनारायण गुरु की अधिकांश कृतियाँ आध्यात्मिक परिवेश को लिए हुए हैं । दर्शन शास्त्र के सिद्धांतों का प्रतिपादन करने वाली कृतियाँ दार्शनिक कृतियाँ मानी जा सकती हैं । आत्मा, ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मोक्ष आदि ही इन रचनाओं का मुख्य प्रतिपाद्य है । दर्शन माला, प्रपंच सृष्टि, अद्वैत दीपिका, ब्रह्म विद्या पंचकम्, आत्मोपदेश शतकम्, दैव दशकम्, मननातीतम् आदि उनकी दार्शनिक रचनाओं में प्रमुख हैं । इन दार्शनिक रचनाओं को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है -

1. अद्वैत दर्शन संबन्धी
2. योग परक
3. सिद्धान्त परक

1. अद्वैत दर्शन संबन्धी रचनायें :

अद्वैत सिद्धांत का प्रतिपादन करने वाली रचनायें इस के अन्दर मानी जा सकती हैं । गुरु ने द्वैत का विरोध किया है । उनके अनुसार सब अद्वैत है, परब्रह्म है । यही उनके अद्वैत मत का आधार है । उक्त रचनाओं में परब्रह्म का प्रतिपादन गुरु ने किया है । द्वैत रूप में जो दिखाई पडता है वह सत्य नहीं ,

अज्ञान के कारण ही ऐसा होता है । अज्ञान को दूर करने पर द्वैत भावना भी दूर हो जाती है और अद्वैत सत्य ही शेष रह जाता है । इस महान सिद्धांत का प्रतिपादन गुरु देव ने अनेक रचनाओं में किया है । अद्वैत दीपिका, जननी नवरत्न मंजरी, आत्मोप शतकम् आदि उनकी अद्वैत दर्शन संबन्धी रचनाओं में मुख्य हैं । आत्मोपदेश शतकम् में सत्य के साक्षात्कार एवं सच्चिदानंद स्वरूपी परमात्मा के अनुभव का सजीव वर्णन किया गया है । इस जगत् का परम सत्य ब्रह्म है, जो अद्वैत है इस सिद्धान्त का स्पष्ट प्रतिपादन इस कविता में मिलता है । सत्य साक्षात्कार के निजी अनुभव की मधुरिमा इस कृति में विद्यमान है ।[1]

जननी नवरत्न मंजरी में गुरु देव ने सृष्टि रहस्य का प्रतिपादन करके अद्वैत सत्य का स्पष्टीकरण किया है । स्वरूप विस्मृति के कारण जड वस्तुओं में आकर्षण होने लगता है । इसके फलस्वरूप क्लेशपूर्ण संसार समुद्र में आत्मा डूबने लगती है । त्रिपुटी के नाश से आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है तब अद्वैत की स्थिति आती है । इसका वर्णन गुरुदेव ने किया है ।[2] यथार्थ सुख और आनंद इस स्थिति में

---

1. ओरु पतिनायिरमादित्यरोन्नाय्
वरुवतुपोले वरुम्विवेकवृत्ति
अरिविने मूटुमनित्यमाययामी -
यिरुलिनेयीर्न्नेषुमादिसूर्यनत्रे - श्रीनारायण गुरुदेव कृतिकल -आत्मोपदेशशतकम् - 35

2. ओन्नाय मामतियिल निन्नायिरम् त्रिपुटि
वन्नाशु तन्मतिमर -
न्नन्नादियिल् प्रिय मुयर्न्नाटलामकटलि -
लोन्नायिवीणुवलयुम्
येन्नाशयम् गतिपेरुंनाद भूमियिल -
मन्नाविराभपटरुम् -
चिन्नाभियिल त्रिपुटियेन्नाणुरुम्पटि -
कलर्न्नारिटुन्नू जननी । - श्रीनारायण गुरुदेव कृतिकल - जननी नवरत्नमंजरी - ।

ही प्राप्त होते हैं । समस्त जीवों का लक्ष्य यही अद्वैत स्थिति है ।[1] कारण कार्य के संबन्ध को दिखाते हुए गुरुदेव ने आत्मा और परमात्मा की अद्वैतता का स्पष्टीकरण किया है ।[2] गुरु देव ने "जननी नवरत्न मंजरी" में प्रपंच सत्य का अनुभूतिपरक वर्णन किया है ।

अद्वैत सत्य को व्यक्त रूप में प्रकाशित करने वाली एक कृति हैं "अद्वैत दीपिका" । अनुभव और युक्ति से अद्वैत सत्य को गुरुदेव ने इस में सुदृढ दिखाया है । यहाँ उन्होंने प्रपंच का विश्लेषण और सत्य दर्शन का वर्णन प्रस्तुत किया है । दृक् दृश्य विवेचन से उन्होंने प्रपंच और बोध को एक ही माना है । याने प्रपंच का कारण बोध है । कारण से कार्य भिन्न नहीं है ।[3]

यहाँ पर गुरुदेव ने अद्वैत सिद्धान्त के स्पष्टीकरण के लिए दृष्टांत, रज्जुसर्पसिद्धान्त आदि को प्रस्तुत किया है ।[4] शास्त्रीय रीति से याने उद्ग्रंथन और

---

1. श्रीनारायण गुरुदेव कृतिकल - जननी नवरत्न मंजरी - 2
2. आरायुकिल तिरकल् नीरायिटुन्नू, फणि
   नारायिटुन्नू, कुटऊम्
   पारायिहुन्नतिनु नेरायिटुन्नुलक -
   मोरायुकिलुण्डखिलउम ..... जननी नवरत्न मंजरी - 4
3. नेरल्ल दृश्यमितु दृक्किनेनीकिनोकिल्
   वेरल्ल विश्वमरिवाम्मरुविल् प्रवाहम् ;
   कार्यत्तिल निल्पतिह कारण सतयन्ये
   वेरल्ल वीचियिलिरिप्पतु वारियत्रे - अद्वैत दीपिका - 2
4. श्रीनारायण गुरुदेव कृतिकल - अद्वैत दीपिका - 6, 7.

अपग्रथन से भी गुरु देव ने बोध {ब्रह्म} और प्रपंच को एक ही माना है ।[1] गुरु देव ने ब्रह्म सत्यम् जगत् मिथ्या तत्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है ।[2] जगत् और सृष्टि के रहस्य को समझने में श्रीनारायण गुरु के अद्वैत दर्शन से संबन्धित रचनायें अत्यन्त सार्थक सिद्ध होती हैं ।

2. योगपरक रचनायें:

यौगिक क्रियाओं के द्वारा सत्य साक्षात्कार का विवरण देने वाली कृतियाँ इस के अंतर्गत आती हैं । मनुष्य के अन्दर रहने वाली कुण्डलिनी शक्ति का उत्थापन और इस के द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार का वर्णन योग परक रचनाओं का मुख्य विषय है । "दर्शन माला" के योग दर्शन में गुरु देव ने योग का निर्वाचन देते हुए योग के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है । यहाँ उन्होंने योग के विभिन्न अंगों का वर्णन भी किया है ।[3] विभिन्न प्रकार के योग का उल्लेख उन्होंने किया है ।[4]

---

1. ओरोन्नतायवयवम् मुषुवन् पिरिच्चु
   वेराकियालुलकमिल्ल विचित्रमत्रे
   वेराकुमीयवयवंगलुमेवमंगो-
   टारायकिलिल्लखिलवुम निज बोध मत्रे - अद्वैत दीपिका - 13
2. सत्यत्तिलिल्लयुलकम् सकलम् विवेक
   विध्वस्तभाय पिरकुम विलसुन्नु मुनपोक्
   निस्तर्कभाय् मरुविलिल्लह नीरमेन्नु
   सिद्धिकिलुम विलसिटुन्नितु मुनप्रकारम् - अद्वैत दीपिका - 10
3. श्रीनारायण गुरुदेव कृतिकल - दर्शन माला - योग दर्शन - 4, 5, 6.
4. श्रीनारायण गुरुदेव कृतिकल - दर्शन माला - योग दर्शन - 7, 8

योग के मार्ग में होने वाले विघ्नों और इनको दूर करने के उपायों का भी वर्णन यहाँ मिलता है । "योग दर्शन" में गुरु देव ने योग से संबन्धित सभी तत्वों का प्रतिपादन करके यौगिक क्रियाओं की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है । "अद्वैत दीपिका", "आत्मोपदेश शतकम्", "षड्मुखस्तोत्रम्" आदि कृतियों में भी उन्होंने योग रहस्य का प्रतिपादन किया है । असली अर्थों में उनकी "कुण्डलिनी पाट्ट" ही योग का चित्रण करने वाली सुप्रधान पद्यरचना है । योगानुभूति के प्रधान रहस्यों को इस कृति में उन्होंने वर्णित किया है । कुण्डलिनी प्रसार के साथ योगी को अनुभव होने वाले रहस्यों का सजीव वर्णन यहाँ द्रष्टव्य है । विभिन्न चक्रों से होकर कुण्डलिनी जब जाग उठती है तब योगी में होने वाले अनुभवों का वर्णन गुरुदेव ने बडी ही बारीकी के साथ किया है ।[1]

3. वेदान्त या सिद्धान्तपरक रचनायें:

वेदान्त में प्रतिपादित सिद्धान्त ही इन रचनाओं का प्रतिपादन है । इसलिए इनको वेदान्त गीत भी कह सकते हैं । आत्मा, ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मोक्ष आदि के बारे में इन में प्रतिपादन हुआ है । जीव का लक्ष्य क्या है ? इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जीव का कर्तव्य क्या है ? जगत् क्या है ? माया और उसका निवारण इन सब का प्रतिपादन यहाँ दर्शनीय है । गुरुदेव की "दर्शन माला", "मननातीतम्", "चिज्जडयिन्तनम्", "इंद्रियवैराग्यम्", "पिण्डनन्दी", "प्रपंचसृष्टि", "आत्मविलासम्", "वेदान्तसूत्रम्" आदि रचनायें सिद्धान्तपरक हैं ।

---

1. श्रीनारायण गुरुदेव कृतिकल - कुण्डलिनी पाट्ट - 2, 3, 6, 7, 8, 9.

वेदान्त शास्त्र का समग्र प्रतिपादन "दर्शन माला" में होता है । "अध्यारोप दर्शन", "अपवाद दर्शन", "असत्य दर्शन", "माया दर्शन", भान दर्शन", "कर्म दर्शन", "ज्ञान दर्शन", "भक्ति दर्शन", "योग दर्शन", "निर्वाण दर्शन", आदि का प्रतिपादन दर्शन माला के अन्तर्गत हुआ है । आत्म साक्षात्कार के लिए काम क्रोध आदि विकारों से जीतना अनिवार्य है । गुरु देव ने "मननातीतम्" नामक रचना में काम से मुक्ति पाने की प्रार्थना की है । सत्यान्वेषक के दो मुख्य अंग के रूप में इंद्रियजय और मनोजय को गुरुदेव ने माना है । मनोजय के लिए गुरुदेव ने "मननातीतम्" की रचना की तो इंद्रियजय के लिए "इंद्रिय वैराग्यम्" की रचना की । ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रियों को अपने अधीन में रखने के लिए प्रार्थना के रूप में "इन्द्रियवैराग्यम्" लिखा गया है ।

इस जगत् को दो रूपों में विभक्त कर सकते हैं - चित् और जड । चित् ही सत है जड असत्य है । इसका समर्थन गुरुदेव ने "चिज्जटचिन्तनम्" नामक गद्य कृति में किया है । "पिण्डनन्दी" में मनुष्य रूपी श्रेष्ठ शरीर का निर्माण करके सदा इसका संरक्षण करने वाले ईश्वर के प्रति गुरु देव ने अपना सब कुछ समर्पित किया है । भगवत् महिमा की स्तुति के रूप में यह रचना प्रस्तुत की गयी है । प्रपंच केवल आत्मा का प्रतिबिम्ब मात्र है । सब आत्मा का स्वरूप है । इस तथ्य का प्रतिपादन करने वाली गुरु की गद्य कृति है "आत्मविलासम्" । सूत्र शैली में वेदान्त दर्शन का एक संग्रह है "वेदान्त सूत्रम्" ।

।।. भक्तिपरक रचनायें :

भक्ति ही इन कृतियों का प्रतिपाद्य है । आराध्य देव की ओर अनन्य भक्ति का भाव इन कविताओं में प्रकट होता है । भक्ति के भिन्न भिन्न अंगों

का निरूपण भी यहाँ हुआ है । भक्ति परक रचनाओं में भक्ति के प्रकार भी दिखाए गए हैं । भक्ति के दो प्रमुख भेद हैं - सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति । श्रीनारायण गुरु ने सगुण भक्ति परक अनेक कविताएँ लिखी हैं । गुरु देव की सभी स्तोत्र कृतियाँ सगुण भक्ति परक हैं । विनायकाष्टकम्, वासुदेवाष्टकम्, गुहाष्टकम्, षडमुखस्तोत्रम्, सुब्रह्मण्यकीर्तनम्, शिवशतकम्, शिवप्रसाद पंचकम्, अर्धनारीश्वरस्तवम्, कोलतीरेशस्तवम्, विष्णुवष्टकम्, आदि स्तोत्र कृतियाँ गुरुदेव की सगुण भक्ति परक रचनायें हैं । शिव-प्रसाद पंचकम्, शिवशतकम्, सदाशिव दर्शनम्, परमशिव चिन्ता दशकम् आदि में शैव भक्ति का प्रतिपादन मिलता है । विष्णुवष्टकम् गुरु देव की वैष्णव भक्ति को व्यक्त करने वाली कृति है ।

गुरुदेव ने परम सत्य के प्रतीक के रूप में देवी देवताओं के रूपों की कल्पना की है । इस प्रकार के ब्रह्म प्रतीकों के संकल्प में विघ्नेश्वर का महत्वपूर्ण स्थान है । "विनायकाष्टकम्" में विघ्नेश्वर की स्तुति है । यहाँ गुरु देव ने विघ्न जय के लिए विनायक से प्रार्थना करते हैं । वासुदेवाष्टकम्, गुहाष्टकम्, षडमुखस्तोत्रम्, बाहुलेयाष्टकम्, षडमुखदशकम्, नव मंजरी आदि कृतियाँ सुब्रह्मण्य की स्तुति में लिखी गयी हैं । षडमुखस्तोत्रम् में सुब्रह्मण्य का केशादि पाद वर्णन मिलता है ।[1] बाहुलेयाष्टक में गुरु देव ने सुब्रह्मण्य का ब्रह्मा, विष्णु, महेश और शक्ति स्वरूपिणी के रूप में वर्णन किया है । इनका स्वरूप मंत्र सदृश्य है । "षडमुखदशकम्" भी केशादिपाद वर्णन रूप में रची गयी कृति है । गुरु देव की सुब्रह्मण्योपासना का लक्ष्य ब्रह्मैक्य की स्थिति है । देवी की स्तुति में भी गुरु देव ने अनेक कृतियाँ लिखी हैं । भद्रकालीयष्टकम्, देवीस्तवम्, मण्णन्तलादेवी स्तवम्, कालीनाटकम् आदि पद्य रचनायें इनमें प्रमुख हैं । भद्रकालियष्टकम् में उन्होंने देवी के भयानक रूप का वर्णन किया है । फिर भी

---

1. श्रीनारायण गुरुदेव कृतिकल - षडमुख स्तोत्रम् - 1 से 7 तक

भक्तों को अनुग्रह देनेवाली है भद्रकाली । देवी का वर्णन आठ संस्कृत श्लोकों में गुरु देव ने किया है । भक्तों के प्रति कारूण्य भाव और दुष्टों के प्रति कठोरता दिखाने वाली काली का वर्णन उन्होंने किया है ।[1] काली के भिन्न भावों का भिन्न पद्यों में वर्णन है । देवी स्तवम् में विद्यारूपिणी देवी की स्तुति की गयी है । यह प्रपंच ब्रह्म शक्ति काली का खेल है यही कालीनाटक का प्रतिपाद्य है ।

भावमाधुर्य और अनुभव माधुर्य से भरपूर रचना है "कालीनाटकम्" । कोलतीरेशस्तवम्, चिदम्बराष्टकम्, शिवप्रसाद पंचकम्, शिवशतकम्, परमशिव चिन्ता दशकम् आदि शिव की स्तुति में लिखी गयी पद्य रचनायें हैं । कोलतीरेशस्तवम् में गुरु देव ने उपनिषत् तत्व का समर्थन करते हुए आत्म बल के साथ शरीर बल भी प्रदान करने की प्रार्थना की है ।[2] चिदम्बराष्टकम् में दक्षिण भारत के प्रसिद्ध मंदिर चिदम्बरम् के भगवान की महिमा गायी है । शिवप्रसाद पंचकम् में भी गुरु देव ने

---

1. मातंगानन बाहुलेय जननीम्
   मातंग संगामिनीम्
   चेतोहारितनुच्छवीम् शफरिका -
   चक्षुष्मतीमांबिकाम्
   जृंभत् प्रौढनिसुंभथिनी -
   भंभोजभू पूजिताम्
   संपत् सन्ततीदायिनीं हृदि सदा
   श्रीभद्रकालीम् भजे - भद्रकालियष्टकम् - 5
2. रोगादिकलेल्लाभोषिवाकीटुकवेणम्
   हे । कामदा, कामान्तका, कारूण्य पयोधे ।
   एकीटणमे सौरष्यमेनिक्कनूपोटु शंभो ।
   कोलत्तुकरकोविलिल् वाषुम् भगवाने । - कोलतीरेशस्तवम् - 6

शिव की स्तुति की है । "शिवशतकम्" सौ पद्यों का एक समाहार है । भक्त हृदयों में भक्ति, वैराग्य और ज्ञान का उदय ही इस रचना का लक्ष्य माना जा सकता है । निरंतर शिव मंत्र के जप से ब्रह्म साक्षात्कार संभव है, इसको गुरु देव ने व्यक्त किया है । इस प्रकार सांसारिक भ्रम से मुक्त होने के लिए सर्वात्म भाव से इष्टदेवोपासना करना और ईश्वर की शरण प्राप्त करना गुरु देव का लक्ष्य है ।[1]

III. सामाजिक रचनायें :

सामाजिक रचनाओं में मानव एवं समाज की उन्नति की कामना की गयी है । अनुकम्पा दशकम्, जीवकारुण्य पंचकम्, दतापहारम्, जाति निर्णयम्, जाति लक्षणम्, आश्रमम्, धर्मम् आदि गुरु देव की सामाजिक रचनायें हैं । श्रीनारायण गुरु का धर्मसमन्वय सिद्धान्त का दिव्य स्वरूप अनुकम्पा दशकमम् में होता है । एकत्व का दिव्य सन्देश इस कृति में गुरु देव ने दिया है । स्नेह, दया, अनुकम्पा इन तीनों गुणों की महिमा को उन्होंने व्यक्त किया है ।[2]

---

1. शिव । शिव। निन् तिरु नाम मोर्तुकंण्डा -
   लेविटेयुमोन्नुमितिन्नु तुल्यमल्ला
   इवा पलतुल्लिलरिज्जिरुन्नुमोशान
   निविटेयिवण्णमलंजिटुन्नु कष्टम् - शिव शतकम् - 5
2. अरुलन्पनुकम्पा मून्निनुम्
   पोरुलोन्नाणितु जीवताशकम् ;
   "अरुलुल्लवानाणु जीवि" ये -
   न्नुरुविट्टीटुकयी नवाक्षरी - अनुकम्पा दशकम् - 3

अहिंसा का दिव्य सन्देश उनकी "जीवकारुण्य पंचकम्" नामक कृति में मिलता है । जीवकारुण्य ही अहिंसा है । अन्य जीवों के प्रति "दोषचिन्तन" नहीं होना चाहिए यही अहिंसा है । अहिंसा का नया अर्थ गुरु देव ने दिया है । समस्त जीव एक ही परम पिता की सन्तान है । अतः सब सहोदर हैं । यही साहोदर्य भावना सभी के प्रति होनी चाहिए । सभी जीवों को बन्धु या सहोदर स्थापित करके गुरु देव ने अहिंसा की महत्ता और माँस भक्षण की हीनता को लोगों को समझाया है ।[1] मानव व्यवहार की ओर प्रकाश डालने वाली एक छोटी सी कविता है "दतापहारम्" । मानव के लिए सत्य और धर्म की आवश्यकता को उन्होंने व्यक्त किया है ।[2] "धर्मम्" नामक कविता में उन्होंने यह बताने का प्रयास किया है कि आध्यात्मिक लक्ष्य पर खडे होकर उसका प्रचार एवं प्रसार करने के लिए किन किन नियमों का पालन आवश्यक है । धर्म की महानता को उन्होंने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है ।[3] आश्रम

---

1. येल्लावरुमात्मसहोदररे -
   न्नल्ले परयेण्डतितोर्कु किल् नाम
   कोल्लुन्नतुमेंगने जीविकले -
   तेल्लुम क्रपयटु भुंजिक्कयतुम् - जीवकारुण्य पंचकम् - ।
2. ओन्नोण्डु नेरु नेरल्लि -
   तोन्नुम मर्त्यकुं सत्यवुम्
   धर्मवुम् वेणमायुसुम्
   निलकुकिल्लार्कु मोर्कुका - दतापहारम् - ।
3. धर्म एव परं दैवम्
   धर्म एव महाधनम्
   धर्मसर्वत्र विजयी
   भवतु श्रेयसे नृणाम् - धर्मः ।

क्या है, आश्रम के गुरु की क्या योग्यता होनी चाहिए, आश्रम का काम और कर्तव्य क्या है आदि बातों का विवरण "आश्रमम्" नामक कविता में हुआ है ।

गुरुदेव की कृतियों का सब से श्रेष्ठ सन्देश जाति निषेध का था । जाति क्या है ? जाति और जन्म का संबन्ध क्या है ? "एक जाति, एक धर्म, एक दैव मनुष्य को" इस नारे की अंत:सत्ता क्या है ? इन सभी प्रश्नों का समाधान जाति निर्णयम् नामक कविता में हुआ है । जाति निषेध के शास्त्रीय सिद्धान्त का सुन्दर प्रतिपादन गुरु देव ने "जाति निर्णयम्" में किया है ।[1] गुरु देव के जीवन का सबसे श्रेष्ठ उद्देश्य जाति भेद का उन्मूलन था । रूपभेद के अनुसार मनुष्य पशु, पक्षि आदि भिन्न वर्ग है । एक ही मनुष्य जाति के कई विभागों का होना अशास्त्रीय है । वर्ग भेद को दिखाने वाले लक्षणों को गुरु देव ने "जाति लक्षणम्" नामक कृति में व्यक्त किया है ।[2] मनुष्य को देखते ही व्यक्त होता है कि किस जाति का है । इसलिए जाति पूछने की कोई आवश्यकता नहीं ।[3] इस प्रकार जाति निर्णयम् और जाति लक्षणम् नामक

---

1. मनुष्याणाम् मनुष्यत्वम्
   जातिर्गोत्वम् गवाम् यथा
   न ब्राह्मणादिरस्त्येवम्
   हा ! तत्वम् वेति कोपि न - जाति निर्णयम् - ।
2. पुणन्नुपेरु मेल्ला मो -
   रिनमाम् पुणरात्ततु
   इनमल्लिनमामिगौ
   रिणयान्नोत्तुकाण्मतुम् - जाति निर्णयम् - ।
3. पेरूतोषिली मून्नुम्
   पोरूमायतु केलकुका
   आरु नीयेन्नु केलकेण्डा
   नेरु मेय् तन्ने चोलकयाल - जाति लक्षणम् - 4

रचनाओं के ज़रिए गुरुदेव ने समाज में समत्व का दिव्य सन्देश प्रसारित किया है ।

अनूदित रचनायें :

गुरुदेव ने कुछ मूल कृतियों के अनुवाद भी प्रस्तुत किये हैं, जिनमें तिरुकुरल (तमिल) ईशावास्योपनिषत् आदि प्रसिद्ध है । तिरुकुरल प्राचीन तमिल की श्रेष्ठतम रचना मानी जाती है । इसके रचयिता हैं तिरुवल्लुवर । गुरुदेव ने इस ग्रंथ के तीन अध्यायों का अनुवाद किया है । ईशावास्योपनिषत् के मूल मन्त्रों का अनुवाद गुरुदेव ने उसी रूप में किया है । बाइस मन्त्रों में उन्होंने दस का अनुवाद किया है । संस्कृताभिज्ञ केरल के लोगों के लिए गुरुदेव का यह अनुवाद उपनिषत् के पठन में एक अनुग्रह ही है ।

कबीर और श्रीनारायण गुरु की कृतियाँ - समानता और असमानता

कबीर और श्रीनारायण गुरु के महान व्यक्तित्व का प्रतिफलन उनके विचारों में हम पाते हैं । दोनों की कृतियाँ उनके विचारों को अभिव्यक्त करने वाली हैं । कविता लिखना कबीर और श्रीनारायण गुरु का लक्ष्य नहीं था । अपने विचारों को प्रकट करने वाले माध्यम के रूप में ही उन्होंने इन कृतियों की रचना की है । इन कृतियों के माध्यम से दोनों ने अपने विचारों को जनसाधारण को प्रदान किया ।

कबीर दास जी ने अपने विचारों को साखी, सबद और रमैंणी के रूप में प्रस्तुत किया है । याने अपनी समस्त कृतियों को साखी, सबद और रमैंणियों में समेट दिया है । लेकिन श्रीनारायण गुरु ने गद्य और पद्य के रूप में विविध शीर्षकों

के ज़रिए अपने विचारों को प्रस्तुत किया है । उनकी अधिकांश कृतियाँ छोटी मोटी कविताओं और स्तोत्रों के रूप में लिखी गयी हैं । अपने भिन्न भिन्न विचारों को की भिन्न भिन्न कृतियों में अभिव्यक्त किया है । दोनों की कृतियों में विषयगत साम्य अवश्य है । लेकिन कबीरदास जी ने जहाँ अपने मौलिक विचार ही प्रकट किये हैं, वहाँ गुरु जी के कुछ अनुवाद भी प्रस्तुत हुए हैं । दोनों की कृतियों का मुख्य प्रतिपाद्य आत्मा, ब्रह्म और जगत् से संबन्धित होने पर भी कई जगहों पर अन्य अनेक विषयों की चर्चा भी मिलती है । ये कृतियाँ जनसाधारण को ज्ञान प्रदान करके उनके जीवन को उज्ज्वल बनाने के लिए सहायक है । आध्यात्मिक विषयों पर बल देने पर भी दोनों ने भौतिक जीवन की उन्नति का मार्ग भी अपनी कृतियों द्वारा प्रकट किया है । ब्रह्म, जीव, जगत्, माया आदि के बारे में दोनों ने अपनी कृतियों में जो विचार प्रकट किये हैं उनमें समानता है । योग दर्शन संबन्धी कृतियाँ दोनों ने रची हैं । कुण्डलिनी उत्थापन आदि योग तत्वों का सुन्दर वर्णन दोनों की कृतियों में मिलता है । दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन दोनों ने अपनी कृतियों में समान रूप से किया है । भक्तिपरक रचनाओं में कबीर और श्रीनारायण गुरु में कुछ भिन्नता दिखाई पडती है । तीव्र निर्गुणवादी कबीरदास जी अपनी समस्त कृतियों में निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं तो गुरुदेव स्वयं निर्गुणवादी होने पर भी एक ओर सगुण भक्ति का भी समर्थन करते हैं और दूसरे शब्दों में गुरुदेव समन्वयवादी हैं । निर्गुण-सगुण समन्वय उनकी कृतियों में हम देख सकते हैं । इस प्रकार ब्रह्म प्रतीक के रूप में श्रीनारायण गुरु सगुण भक्ति का समर्थन करते हैं । लेकिन किसी भी हालत में सगुण को अपनाने में कबीर तैयार नहीं । इन दोनों महात्माओं के विचारों की भिन्नता ध्यान देने योग्य है ।

सामाजिक कृतियों में दोनों में बहुत अधिक समानता है । जाति-पांति, छुआ-छूत, उच्च-नीचता आदि का उन्मूलन करना दोनों ने अपना लक्ष्य माना ।

अहिंसा, दया, आदि मानवीय गुणों पर दोनों ने अपनी कृतियों में समान रूप से ज़ोर दिया है । मानवीय मुक्ति की अभिलाषा दोनों में हैं । सामाजिक न्याय और शोषण से मुक्ति दोनों का लक्ष्य है । कबीर और गुरूदेव ने दलित वर्ग का उद्धार करना चाहा, उनको आत्मबल प्रदान करना चाहा । इस प्रयास में कबीर ने तीव्र दृष्टि को अपनाया । उच्च जाति की भर्त्सना के साथ उनके सगुण देवताओं को भी नकारा । निर्गुण को मात्र मान्यता दी । गुरु ने यहाँ सामंजस्य का रास्ता अपनाते हुए ब्रह्म तत्व को सगुण निर्गुण दोनों में ढूँढा ।

तीसरा अध्याय

संत कबीर और श्रीनारायण गुरु के दार्शनिक विचार

तीसरा अध्याय

संत कबीर और श्री नारायण गुरु के दार्शनिक विचार

दर्शन शब्द की निष्पत्ति "दृश" धातु से करण अर्थ में "ल्युट" प्रत्यय लगाकर हुई है, जिसका अर्थ होता है जिस के द्वारा देखा जाय । देखना तो चक्षु के द्वारा ही हो सकता है । दर्शन के लिए हमें स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार के चक्षुओं की आवश्यकता होती है । स्थूल तत्वों को स्थूल नेत्र से तथा सूक्ष्म तत्वों को सूक्ष्म नेत्र से हम देखते हैं । यह संसार क्या है, जीवन मृत्यु का बन्धन क्या है, इस सुख दुख का सार क्या है, मैं क्या हूँ, इन सभी के मूल में अव्यक्त रहस्य को समझ लेना ही दर्शन है । सर्वत्र एक ही आशय को देखना और सब में एक ही परमेश्वर का दर्शन करना, यही यथार्थ दर्शन है । "जीवन की सर्वांगीणता के निर्णायक जो सूत्र, तन्तु या तत्व है, उन्हीं की व्याख्या करना दर्शन का अभिप्रेय है ।"[1] अंग्रेज़ी में दर्शन को फिलोसफी कहते हैं । डा. एस.एन.गुप्ता के अनुसार "philosophy may be defined as the interpretation in intellectual terms of man and nature and their relation towards each other. It is an attempt to apprehence the nature of Truth".[2]

जीवन दुखमय है । सुख और दुख के भोग करने के लिए जीव इस संसार में आता है । शुद्ध सुख इस संसार में कभी नहीं मिलता । अत: यह संसार केवल दुखमय है, और जितने जीव यहाँ आते हैं, सभी किसी न किसी प्रकार के दुख

---

1. पायस्पति गैरोला - भारतीय दर्शन - 44
2. Dr.S.N.Gupta - History of Indian Philosophy - pg.56

से आजीवन चिंतित रहते हैं । इस संसार में दुख से छुटकारा किसी भी जीव को नहीं है । लेकिन यह तो सत्य है कि दुख किसी को प्रिय नहीं है । दुख से छुटकारा पाने के लिए सब सदैव प्रयत्न करते रहते हैं जब तक दुख से सर्वथा छुटकारा नहीं मिल जाता, तब तक जीव का प्रयत्न चलता ही रहता है, इसके लिए जीव को अनेक बार जन्म लेना पडता है । दुख से सदा के लिए छुटकारा प्राप्त करना ही जीव का चरम लक्ष्य है । तब जीव सदा के लिए जन्म मरण से मुक्त हो जाता है । दर्शन शास्त्र का परम तत्व भी यही है ।

दर्शन शास्त्र में भारत वर्ष की मानसिक निधि सुरक्षित है । अनादि काल से ज्ञानियों ने इस निधि की खोज की है और समय समय पर सुन्दर तथा बहुमूल्य रत्नों को इस से निकाल कर भारत वर्ष का गौरव बढाया है । आज भी इसी बहुमूल्य दर्शन शास्त्र की चिन्तन धारा के बल पर भारतवर्ष का मस्तक ऊँचा है ।

अद्वैत दर्शन :

वेदान्त दर्शन के अद्वैत वाद का प्रचार भारत में बहुत प्राचीन काल से हुआ है । किन्तु जगत् गुरु शंकराचार्य ने इस को नूतन और परिष्कृत रूप देकर सब से अधिक प्रचार किया । इसी कारण अद्वैत वाद शंकरमत के नाम से विख्यात है । जगत्, जीव और ब्रह्म के वास्तविक स्वरूपों का विवेचन तथा उनके पारस्परिक संबन्धों की मीमांसा करना अद्वैत दर्शन का प्रतिपाद्य विषय है । वेदान्त दर्शन ने प्रकृति पुरुष रूपी द्वैती भाव को मिटाकर उनका समावेश एक ही परम तत्व ब्रह्म में किया है ।

इस नाना-नाम - रूपात्मक भासात्मक जगत् के मूल में अधिष्ठित होकर रहने वाले नित्य और निर्विकार ब्रह्म तत्व के स्वरूप का निरूपण भी वेदान्त में है । वेदान्त के अनुसार हम जगत् में जो नाना दृश्य देख रहे हैं, वे सब परिणामी और अनित्य है । ब्रह्म ही नित्य स्वरूप है । सृष्टि विषयक ज्ञान के लिए वेदान्त में तीन सिद्धान्त है । विवर्तवाद, दृष्टि सृष्टि वाद और अवच्छेद वाद । विवर्तवाद के अनुसार जगत् ब्रह्म का विवर्त या कल्पित रूप है । उदाहरणार्थ रस्सी को यदि हम सर्प समझें तो रस्सी सत्य वस्तु है और सर्प उसका विवर्त या भ्रांति जन्य प्रतीति । फिर माया या नाना रूप से मन की प्रवृत्ति है । ये नाना रूप वृतियों से पृथक कोई दूसरी वस्तु नहीं है । इन वृतियों का शमन करना ही मोक्ष प्राप्ति है । तीसरा वाद अवच्छेद वाद है जिसके अनुसार ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् की जो प्रतीति होती है वह एकरस या अवच्छिन्न सत्ता के भीतर माया द्वारा होती है । ब्रह्म, प्रकृति या माया के बीच अनेक प्रकार से प्रतिबिम्बित होता है, जिस से नाना रूपों की प्रतीति होती है । अद्वैत वेदान्त की दृष्टि से जगत् का यह सारा दृश्य माया के कारण है ।

दर्शन के प्रमुख अंग :

ब्रह्म, जीव, जगत्, माया आदि का प्रतिपादन दर्शन शास्त्र के अंतर्गत आता है । ये ही दर्शन के प्रमुख अंग माने जाते हैं ।

ब्रह्म :

ब्रह्म शब्द ब्रह्म या बृहि धातु से निष्पन्न हुआ है जो महत्व का अभिधान करता है । नामरूपात्मक जगत् से परे एक अव्यक्त एवं निर्गुण, परम सत्य को ब्रह्म कहते हैं । ब्रह्म विश्व का मूल तत्व है । ब्रह्म परंपरा का प्रचलन वेदों से ही प्रारंभ होता है । उपनिषदों में उसकी पूर्ण प्रतिष्ठा हुई । "अनेक उपाधियों में विवर्तित होकर अनेक प्रकार के जड तथा चेतन पदार्थों में वही ब्रह्म दिखाई देता है ।

इस संपूर्ण विश्व की उत्पति, गति, पालन और स्थिति तथा इस संपूर्ण जगत् के लय के कारण को ब्रह्म कहा गया है ।[1] ब्रह्म का व्यक्त, निर्गुण, निराकार, अजन्मा, अकर्ता आदि स्वरूप में उपनिषदों ने वर्णन किया है । भगवद्गीता में ब्रह्म के व्यक्त , अव्यक्त तथा व्यक्ताव्यक्त आदि रूपों का वर्णन है । उस में सभी इंद्रियों का आभास है, पर उस के कोई भी इंद्रिय नहीं है । वह सर्वातीत है, पर सब का पालन कर्ता है । वह निर्गुण है, पर गुणों का उपभोग करता है ।[2]

गीता में सगुण रूप ब्रह्म की कल्पना है । याने ब्रह्म के स्वरूपों का वर्णन गीता में मिलता है ।[3] ब्रह्म सत्य और अनंत ज्ञान स्वरूप है ।[4] उपनिषदों में ब्रह्म को अद्वैत स्थापित करते है ।[5] इस प्रकार सभी उपनिषदों को समान रूप से मान्य है कि एक अद्वितीय ब्रह्म ही भूत भौतिक प्रपंच का कारण है । उपनिषद् में

---

1. "यतो व इमानि भूतानि जायन्ते, यतो जातन्ति जीवन्ति
   यत् प्रान्त्यभि विशन्ति तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म ।।" -तैतिरीयोपनिषद -3।2।
2. "सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम् ।
   असक्तं सर्वभूच्चैव निर्गुणं गुण भोक्तृ च ।।" - गीता अध्याय - 13-14
3. अनादि मध्यातंअनंतवीर्यमनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
   पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ।।
   - गीता अध्याय - 18-19
4. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मं - तैतिरीयोपनिषद् - 2।8।
5. न तु तद् द्वितीयमस्ति - बृहदारण्यक - 4।23

नेति नेति कहकर ब्रह्म का परिचय दिया गया है । गीता में भगवान कहते हैं कि इस संपूर्ण जगत् का धाता, पिता, माता और पितामह मैं ही हूँ ।[1]

निर्गुण और सगुण रूप ब्रह्म :

उपनिषदों में निर्गुण ब्रह्म की प्रतिष्ठा है । लेकिन ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों की कल्पना भी होती है । निर्गुण निस्पाधि ब्रह्म अपनी माया शक्ति के प्रभाव से सगुण सोपाधि रूप में उपलब्ध होता है । गीता में सगुण ब्रह्म का वर्णन है । गीता में भगवान ने कहा है कि जब जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब तब मैं अपने आप को मनुष्य रूप में जन्म लेता हूँ ।[2] तात्विक रूप में ब्रह्म निर्गुण है । लेकिन उसके सगुण रूप की कल्पना भी अनिवार्य है । यही भावना सामान्य जनता को ज्ञान एवं भक्ति के मार्ग की ओर ले जा सकती है । सृष्टि की रचना के लिए ब्रह्म तटस्थ लक्षण धारण करके निर्गुण से सगुण हो जाता है । इस प्रकार ब्रह्म का व्यावहारिक और पारमार्थिक स्वरूप बनता है ।

जीव आत्मा :

उपनिषदों में आत्मज्ञान का विशद प्रतिपादन किया गया है । सभी जीव में आत्मा है । यह आत्मा ब्रह्म का ही अंश है । अतः प्रत्येक जीव में निवसित आत्मा एक है । लेकिन माया से अविच्छिन्न जीव अपनी अद्वैतता को भूल जाता है । अलग अलग मृत्तिका से निर्मित पात्रों में जल भरकर उन्हें धूप में रख दिया

---

1. पितामहस्य जगतो माता धाता पितामः
   वेद्यम् पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च । भगवद्गीता 9/17
2. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत ।
   अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानां सृजाभ्यहम् ।। - भगवद्गीता - 4/7

जाय तो उनमें सूर्य-प्रतिबिम्ब अलग अलग दिखाई पडता है, लेकिन सूर्य एक ही है उसी प्रकार आत्मा भी एक है । आत्मा की अद्वैतता को कठोपनिषद् में व्यक्त किया है । जिस प्रकार संपूर्ण लोक में प्रविष्ट एक ही वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप बनती है, वैसे ही सब प्राणियों की अन्तरात्मा एक होते हुए भी नाना रूपों में विद्यमान है और नाना प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न है ।[1] उपनिषदों में आत्म तत्व की पूर्ण प्रतिष्ठा है । यहाँ आत्मा और ब्रह्म को एक ही ध्वनित किया है । यह आत्मा ब्रह्म है ।[2] मैं ब्रह्म हूँ ।[3] यह पुरुष स्वयं ज्योति है ।[4] कैवल्योपनिषद् में लिखा है कि जो परब्रह्म सबका आत्मा है, विश्व का महान आयतन सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर और नित्य है, वह तुम्हीं हो, तुम ही वह हो ।[5] जीवात्मा के स्वरूप के बारे में श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा है कि जीवात्मा वास्तव में न तो स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है । वह जिस शरीर को धारण करता है उस समय उस से संयुक्त होकर वैसा ही बन जाता है ।[6] आत्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व है । गीता के अनुसार[7] वह न जन्मता है और न मरता ही है । वह नित्य शाश्वत एवं सनातन है ।

---

1. वायुर्यथको भुवने प्रविष्टो रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
   एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च । - कठो: 2/2 :10
2. अथमात्मा ब्रह्म - बृहदा : - 2/5/19
3. अहं ब्रह्मास्मि - बहदा - 14/10
4. अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योति - बहदा - 4/3/9
5. यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा निश्वस्यायतनं महत् ।
   सूक्ष्मासूक्ष्मतरं नित्यं सत्यमेव त्वमेव तत् ।। - कैवल्य: - 1:16
6. नैव स्त्री न पुमानेव न चैवायं नपुंसकः ।
   यद्यच्छरीरमादत्तं तेन स युज्यते - श्वेता: - 5/10
7. अविनाशी तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् - 2/17
   विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति । गीता 2/17

माया :

भारतीय दर्शन में मायावाद अपना विशिष्ट स्थान रखता है । माया का उल्लेख वेदों में भी पाया जाता है । माया के कारण ही परम पुरुष को जीव भूल जाता है । इस के बारे में कठोपनिषद् में लिखा है कि आत्म-स्वरूप परम पुरुष सब प्राणियों में रहते हुए भी माया के पर्दे में छिपे रहने के कारण सब को प्रत्यक्ष नहीं दीखता । सूक्ष्म तत्वों को समझने वाले पुरुषों के द्वारा ही सूक्ष्म तथा तीक्ष्ण बुद्धि के सहारे देखा जाता है।[1] उपनिषदों में नामरूपात्मक जगत् को, अविद्या को, भ्रम को तथा प्रकृति को माया कहा गया है । गीता में माया को कृष्ण की शक्ति कहा गया है । गीता में कहा है कि यह गुणमयी और दिव्य माया दुस्तर है । इस माया को वे ही पार कर पाते हैं, जो मेरी शरण में आते हैं ।[2]

माया का अर्थ है न दिखाई देने वाली । माया न तो सत् है, न असत् है और न उभय रूप ही । वह न भिन्न है, न अभिन्न और भिन्नाभिन्न विलक्षण है । वह न तो संग है और न अंग रहित ही । अतः वह अनिर्वचनीय है । माया त्रिगुणात्मिका है वह जगत् की सृष्टि का कारण होने से सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों से युक्त है । ये तीनों गुण उसके विशेषण है, साथ ही उसके स्वरूप भी है । अविद्या, भ्रम, अज्ञान, मिथ्या ज्ञान, नामरूपात्मक जगत् आदि शब्दों का प्रयोग माया

---

1. एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ।
   दृश्यतेत्वग्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शीभि : ।। - कठोपनिषद् - 2/3/23
2. दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुःरत्यया ।
   मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।।
   गीता - 1/3/13

के अर्थ में प्रयुक्त होता रहता है । ब्रह्म ज्ञान के बाद वह वैसे ही नष्ट हो जाती है, जैसे सूर्य के उदय होने के बाद अन्धकार । शंकराचार्य ने माया को इस जगत् की उत्पत्ति का कारण बताया है ।

माया की दो शक्तियाँ मानी गयी है, आवरण और विक्षेप । माया की इन्हीं शक्तियों के कारण ब्रह्म का वास्तविक रूप छिप जाता है । ये दोनों शक्तियाँ एक दूसरे की पूरक हैं । आवरण शक्ति के द्वारा ब्रह्म का वास्तविक रूप ढक जाता है और विक्षेप शक्ति नानाविध जगत् प्रपंच को उत्पन्न करके जीव को उसमें उसी प्रकार भ्रमा देती है, जैसे रज्जु में सर्प की उद्भावना होती है । यह माया ही जीव के भ्रम का कारण है । उस को सीधी राह से उल्टी राह में ले जाती है । इसी लिए माया को अविद्या तथा अज्ञान कहा गया है । माया की कोई स्वतन्त्र सत्ता नही है । ब्रह्म से उस का संबन्ध अभेद है । जिस प्रकार लोक में पुरुष और उसकी शक्ति को अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार माया को भी ब्रह्म से अलग नहीं किया जा सकता ।

भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा और परमात्मा - जीव और ब्रह्म - एक हैं । लेकिन माया के कारण जीव और ब्रह्म अलग अलग मालूम पडते हैं । माया के हटने से जीव और ब्रह्म एक हो जाते हैं । मायावाद की परंपरा प्राचीन काल में वेदों से प्रारंभ हुई और सभी भारतीय दार्शनिकों ने माया पर विचार किया है । आचार्य शंकर ने "अध्यासो नाम अनस्मिन् तद्बुद्धि" के अनुसार माया को भ्रम रूप माना है । अवस्तु में वस्तु का आरोप होना मिथ्याज्ञान है, यही आरोप कहलाता है और यही अध्यास है । श्रीमद्भागवत् में माया को अप्रतीति कहा है ।[1]

---

1. ऋते अर्थं प्रतीयते न प्रतीयते यात्मनि ।
तद् विधादात्मनो मायाम् तथा भासो यथा तमः ।। - श्रीमद्भागवत् - 2-9-33

माया एक है या अनेक यह प्रश्न भी उठ सकता है । श्वेताश्वतरोपनिषद् में माया को एक ही कहा गया है । गीता में भी माया एक ही बतायी गयी है । बुद्धि अथवा दृष्टि भेद से माया एक अथवा अनेक कही जा सकती है । तात्त्विक दृष्टि से माया एक है ।

जगत् :

जगत् विचार वेदान्त दर्शन का महत्वपूर्ण विषय है । सभी प्रकार की प्रतीतियों का नाम जगत् या संसार है । इसमें प्रत्येक क्षण परिवर्तन होते हैं । वेदों में सृष्टि उत्पत्ति के संबन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार के विचार पाये जाते हैं । उपनिषदों में सृष्टि प्रक्रिया विभिन्न प्रकार से वर्णित है । प्राय: सभी उपनिषद सहमत हैं कि आत्मा ही जगत् का निमित्त और उपादान कारण दोनों है । जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि से उसी के समान रूपवाली असंख्य चिन्गारियाँ प्रकट होती हैं, उसी प्रकार अविनाशी ब्रह्म से नाना प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं और उसी में विलय भी होते हैं । कठोपनिषद का उल्लेख है कि एक ही अग्नि अनेक रूपों वाली हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्म एक होते हुए भी सभी रूपों वाला हो जाता है । उपनिषदों में प्रणव से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन पाया जाता है । तीनों कालों में जगत् का समष्टि रूप ॐकार ही है ।

वेदान्त की दृष्टि से जगत् की कोई सत्ता नहीं है । ब्रह्म की सत्ता से वह सत्तावान है । इसलिए जगत् को मिथ्या और ब्रह्म को सत्य कहा गया है । {ब्रह्म सत्यम् जगत् मिथ्या} वेदान्त के अनुसार इस जगत् का कारण ब्रह्म है । माया, जो ब्रह्म की कल्पना बुद्धि या इच्छा है, इस स्थूल जगत् का निश्चित उपादान है । शंकराचार्य ने कहा है कि जिस प्रकार सोने से बना हुआ आभूषण

नि:सन्देह सोना ही होता है, उसी प्रकार ब्रह्म से उत्पन्न हुआ जगत् निश्चित ही ब्रह्म है । जगत् का उपादान कारण अज्ञान है । उस अज्ञान के नाश से जगत् का स्वयमेव नाश हो जाता है । जगत् को वे ब्रह्म का विवर्त मानते हैं । ब्रह्म ही मूल तत्व बताया गया है । नामरूप का निरपेक्ष विनाश हो जाने पर केवल वही परम सत्य शेष रह जाता है । स्वर्ण और आभूषण का जो संबन्ध है, वही ब्रह्म और जगत् का है । नामरूपात्मक जगत् एक चित्र के समान है । चित्रकार इस चित्र का मूल तत्व है । वह स्वयं चित्र नहीं, चित्र उसकी कल्पना है । ब्रह्म और जड जगत् के बीच में कार्य कारण संबन्ध है । सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर कपडा अपने धागों से पृथक वस्तु नहीं है और न मेज़ ही अपनी लकडी से भिन्न है । मिट्टी का घडा वस्तुत: मिट्टी ही है और पत्थर से निर्मित पत्थर मूर्ति वस्तुत: पत्थर ही है । विवर्तवाद, अध्यासवाद और प्रतिबिम्बवाद के अनुसार ब्रह्म ही सत्य है जगत् मिथ्या है । सर्वात्मवाद के अनुसार सकल विश्व ब्रह्म ही है ।[1] विश्व के कण कण में आत्म तत्व व्याप्त है । ये नाना प्रकार के पदार्थ, जो प्रतिभासित है, सब उसी की अभिव्यक्ति है ।[2] ब्रह्म ही चराचर जगत् में व्याप्त है । कारण और कार्य अभिन्न हैं । कार्य कारण ही की अवस्था मात्र है ।[3] इस प्रकार अनेक उदाहरणों से स्पष्ट दिखलाया गया है कि ब्रह्म ही मूल तत्व है और जगत् जैसी कोई वस्तु नहीं है ।

कबीर और श्रीनारायण गुरु के दार्शनिक विचार

कबीर और श्रीनारायण गुरु भारतीय दार्शनिक परंपरा के दो महान ऋषि हैं । भारतीय दर्शन से दोनों प्रभावित हुए हैं और भारतीय दार्शनिक

---

1. सर्वं स्वल्विदं ब्रह्म- छन्दोग्योपनिषद - 3/14
2. नेह नानास्ति किंचन - बृहदारण्यक - 4/4/9
3. कारणस्य एव संस्थानमात्रं कार्यम् । - ब्रह्मसूत्रम् - शां. भा. 2/2/17

पथ से चलकर वे जीवन के चरम लक्ष्य का साक्षात्कार कर पाये हैं । भारतीय दर्शन के मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म, आत्मा, ब्रह्म, माया जगत् आदि पर कबीर और श्रीनारायण गुरु ने सूक्ष्म विचार किया है । कबीर और श्रीनारायण गुरु के दार्शनिक विचारों का अध्ययन इन्हीं तत्वों के विश्लेषण से ही पूर्ण हो सकेगा ।

कबीर के ब्रह्मसंबन्धी विचार :

कबीर दास ने ब्रह्म को मूल तत्व कहा है । विश्व का आधार होते हुए भी कबीर ब्रह्म को अविनाशी मानते हैं । वे ब्रह्म को स्वतन्त्र सत्ता मानते हैं । उसका कोई आधार नहीं है ।[1] वे ब्रह्म को कारण कार्य संबन्ध से रहित अजन्मा, अमर, निर्विकार तथा अविनाशी मानते हैं ।[2] वह आनंद स्वरूप है ।[3] कबीर ब्रह्म को अद्वैत तत्व मानते हैं ।[4] उसके दो भेद बताना अबुद्धि का काम है, निरा भ्रम है । कबीर का ब्रह्म गुणातीत और निर्गुण है ।[5] कबीर के अनुसार ब्रह्म ही पारमार्थिक सत्य है अथवा अन्ततम अस्तित्व है । वह सत, चित आनंद स्वरूप है । वह जगत् का एकमात्र अधिष्ठान है । ब्रह्म निर्गुण, निराकार, निर्विकार, शाश्वत, अपार, असीम, अजन्मा, अकर्ता, अविनाशी, इन्द्रियातीत, गुणातीत, संख्यातीत एवं सकल अतीत है ।

---

1. अरचि अवगति है निरधारा, जांण्यां जाइ न पार पाय -
   श्याम सुन्दर दास - कबीर ग्रंथावली - पृ. 247
2. श्याम सुन्दरदास - कबीर ग्रंथावली - पृ. 242
3. " " - पृ. 225
4. " " - पृ. 106
5. गुणातीत जस निरगुण आप, भ्रम जेवडी जगी कीयौ साँप ।।
   श्याम सुन्दर दास - कबीर ग्रंथावली - पृ. 197

कबीर दास ने ब्रह्म को अनेक विशेषणों से वर्णित किया है । ब्रह्म के रसानंद स्वरूप का वर्णन कबीरदास ने किया है । उनके अनुसार रसानंद ब्रह्म को प्राप्त करना चरम लक्ष्य है । कबीर कहते हैं कि यह रस महँगा है इसे हर कोई नहीं पी सकता ।[1] ज्ञान स्वरूपी ब्रह्म का वर्णन भी कबीर दास ने किया है ।[2] ज्योति स्वरूपी ब्रह्म का वर्णन भी उन्होंने किया है ।[3] ब्रह्म का शब्द रूप का वर्णन भी कबीर दास ने किया है । शब्द ब्रह्म प्रतिरूप प्रणव अथवा ऊँकार को कबीर दास ने श्रद्धापूर्वक अपनाया और उसे विश्व का मूल तत्व कहा है ।[4] शून्य रूप ब्रह्म का वर्णन भी कबीर में पाया जाता है । कबीर दास ने निर्गुण ब्रह्म को अनिर्वचनीय तत्व कहा है । उनके अनुसार उस तत्व का इंद्रियों द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता । कबीर का अनिर्वचनीय तत्व ब्रह्म अवर्णनीय, अकथनीय तथा अदृश्य है । कबीर उसे गूँगे का गुड कहते हैं । ब्रह्म के लिए नेति नेति वाद भी कबीर के लिए स्वीकार्य है ।

कबीरदास जी ने कभी कभी भक्त भावना के आवेश में ब्रह्म में श्रेष्ठतम एवं मानवोचित विशिष्टताओं का आरोप भी किया है । याने ब्रह्म के

---

1. कहै कबीर महारस महँगा, कोई पीवैगा पीपणहार रे ।।
   श्यामसुन्दर दास - कबीर ग्रंथावली - पृ. 110
2. श्यामसुन्दर दास - कबीर ग्रंथावली - पृ. 241
3. श्यामसुन्दर दास - कबीर ग्रंथावली - पृ. 327
4. ऊँकार आदि है मूला, राजा परजा एकोहि मूला -
   श्यामसुन्दर दास - कबीर ग्रंथावली - पृ. 244

सगुण रूप का वर्णन किया है । लेकिन कबीर दास ने अवतार वाद को स्वीकार नहीं किया । ये सदैव इसके विरोधी रहे । उन्होंने कभी भी इस बात को स्वीकार नहीं किया कि निर्गुण ब्रह्म भक्तों की रक्षा केलिए मनुष्य की भाँति जन्म लेता है और भू-भार को उतार कर धर्म की स्थापना करता है । कबीर के अनुसार व्यवहार केलिए ही ये बातें कही जाती हैं । भक्त भगवान का सान्निध्य प्राप्त करने के हेतु भाँति भाँति की कल्पना द्वारा अनेक मानवी संबन्धों का आरोप भगवान और अपने बीच स्थापित करता है । कबीर में भी दाम्पत्य संबन्ध तथा वात्सल्य संबन्ध पाये जाते हैं । ऐसे अंश रहस्यात्मकता से जुडे रहते हैं ।

आत्मा :

महात्मा कबीर ने आत्मा को अद्वैत कहा है । उनका विश्वास है कि आत्मा एक है जो लोग द्वैतवाद में विश्वास रखते हैं, वे इस को अज्ञानवश जान नहीं पाते और उन्हें तर्क ही प्राप्त होता है ।[1] कबीर ने आत्म-तत्व की एकता एवं अद्वैतता को सुन्दर उक्ति द्वारा प्रस्तुत किया है । जैसे पाँच रंग की दस गायों का दूध निकालने पर एक ही वर्ण का होता है, अलग अलग गउओं के वर्ण का नहीं होता, इसी प्रकार भांति भांति नामरूप के भीतर एक अद्वैत तत्व ही व्याप्त है ।[2]

---

1. हम तो एक एक करि जांना,
   दोई कहैं तिनही कौ दाजेग, जिन ताहिन पहिचाना ।।
   श्यामसुन्दर दास - कबीर ग्रंथावली - पृ. 105

2. पंच वरन दस दुहिये गाय, एक दूध देखौ पतिआइ
   कहै कबीर संसा करि दूर, त्रिभुवनाथ रह्या अखूर ।।
   - कबीर ग्रंथावली - पृ. 105

कबीर ने आत्मा और ब्रह्म की एकता को स्थापित किया है । "सोहं", "हंसा एक समान", "काया के गुण आनंहि भांना" आदि से कबीर घोषित करते हैं कि आत्मा और ब्रह्म एक हैं । आत्म तत्व समग्र मानव शरीर में ही नहीं वरन् सकल विश्व में भी व्याप्त है । कबीर के अनुसार यह आत्म तत्व सब घट वासी है ।[1] कबीर दास ने आत्मा और ब्रह्म के बीच अंशांसी संबन्ध को व्यक्त किया है ।[2] कबीर के अनुसार आत्मा अजर और अमर है । वे कहते हैं कि यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व है । एक निश्चित समय के उपरान्त यह शरीर का त्याग करती है तथा अन्य शरीर में अपनी अभिव्यक्ति करती है । वे कहते हैं कि जो वस्त्र धारण किया गया है वह अवश्य फटेगा और उसके स्थान पर नवीन वस्त्र धारण किया जायेगा । उसी प्रकार जो उत्पन्न होता है, वह अवश्य मरेगा ।[3] इस प्रकार कबीर का आत्म वर्णन गीता और उपनिषदों के साम्य में है ।

माया :

कबीर दास ने माया का विविध प्रकार से वर्णन किया है । कबीर माया को भ्रम रूप स्वीकार करते हैं । उनका मत है कि माया हमारी बुद्धि में भ्रम उत्पन्न कर उसे विकारयुक्त कर देती है जिस से सत्य वस्तु के स्थान पर मिथ्या पदार्थ की हमें प्रतीती होती है और हम उस भुलावे में पडकर अपना ज्ञान भूल

---

1. अबर एक अकल अविनाशी, घर घर आप रहै - क. ग्रं. - पृ. 144
2. बूंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाइ ।
   समंद समाना बूंद में, सो कत हेज्या जाइ ।। - क. ग्रं. - पृ. 17
3. जो पहज्या सो फाटिसी, नांव धज्या सो जाइ ।
   कबीर सोइ तत नाहि, जौ गुरि दिया बताइ ।।
   - कं. ग्रं - पृ. 73

जाते हैं ।[1] कबीर कहते हैं कि भ्रम के कारण सत्य वस्तु के स्थान पर मिथ्या पदार्थ की प्रतीति होती है ।[2]

कबीर दास ने माया को अनिर्वचनीय कहा है । कबीर कहते हैं कि माया रूपी बेल विरोधात्मक गुणसंपन्न है । यह बेल काटने अर्थात् उपभोग करने पर अधिक आकृष्ट करती है और यदि इसे ईश्वर ध्यानरूपी जल से सींचा जाता है, तो अपने आप कुम्हला जाती है अर्थात् साधक के मन में वैराग्य भाव उत्पन्न हो जाता है और उसे माया की अपेक्षा नहीं होती । इसकी विशिष्टता कहने में नहीं आती अर्थात् अनिर्वचनीय है ।[3]

कबीरदास ने भिन्न प्रकार से माया का निरूपण किया है । सृष्टि तथा विलय सब क्रियाओं की संपादिका कबीर के अनुसार माया है । पांच तत्व, तीन गुण आदि तथा अष्टधा प्रकृति, सभी विकार, उत्पन्न होना एवं विनाश होना यह सब माया ही है ।[4] माया के स्वभाव के बारे में कबीर दास जी बताते है कि माया का प्रमुख स्वभाव है चंचलता तथा परिवर्तनशीलता । यह क्षण-प्रतिक्षण स्वरूप

---

1. भरम करम दोऊ मति यश्हरिया, झूठे नांउ सांच ले धरिया । - क. ग्रं.- पृ. 237
2. ज्यूं रजनी रजु देखत अंधियारी, उसे भुवंगम बिन उजियारी
   झूठ देखि जीव अधिक डराई, बिनां भुवंगम इसी दुनियांई ।
   कबीर ग्रंथावली - पृ. 237
3. जो काटों तो डहडही सींचौ तौ कुम्हलाय ।
   इस गुणवन्ती बेल का कुछ गुण कहा न जाय ।। क. ग्रं. - पृ. 86
4. पाँच तत तीनि गुण जुगति करि सन्यासी, अष्ट बिन होत नहीं कंम काया ।
   पाप पुन बीज अंकूर जामै भरै, उपजि बिनसै जेती सर्व माया ।।
   क. ग्रं- पृ. 156

बदलती ही रहती है । यह वायु के समान सदा सर्वदा अविरल धारा प्रवाह में प्रवाहित रहती है ।[1] कबीर ने माया को दुख रूपा, बन्धन रूपा तथा अज्ञान रूपा भी कहा है । वे माया को त्रिविध ताप, दुख और संताप का ऐसा वृक्ष कहते हैं जिस में शीतल छाया का नाम नहीं और जिस के फल अत्यन्त खट्टे है और जिसका तन भयंकर ज्वाला है ।[2] कबीर के अनुसार माया स्वभाव से व्यभिचारिणी है । यह अत्यन्त मोहक और आकर्षक है । प्रयत्न करने पर भी यह पीछा नहीं छोडती । मनुष्य माया को आनंद समझकर उसके लिए प्राणों तक का उत्सर्ग करता है । माया ने सभी को जकड रखा है ।[3] माया के स्वरूप तथा स्वभाव के कारण कबीर ने माया को कई प्रकार के नाम दिये है जैसे, डकनी, डाइन, सर्पनी, नकटी, चोरटी, पिशाचिनी आदि ।

कबीर दास ने तात्विक दृष्टि से माया को एक ही माना है । लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से कबीर उस के तीन भेद बताते हैं - झीनी माया, मोटी माया और विद्यारूपिणी माया । भ्रम रूपी माया को कबीर ने झीनी माया कहा है । मोटी माया के अन्तर्गत धन, संपदा, कनक, कामिनी वैभव आदि आते हैं । इस प्रकार

---

1. कबीर माया डोलनी पवन है हिवधार ।
   जिनि बिलोया तिन पाइया अपन बिलोवनहार । - क. ग्रं. - पृ. 257
2. माया बिखर त्रिविधि का, साखा दुख संताप ।
   सीतलता सुपिनै नहीं, फल फीकौ तन ताप ।। - क. ग्रं. - पृ. 34
3. माया तजूं तजी नहीं जाइ, फिरि फिरि माया माहि लपटाइ ।।
   माया आदर माया मांन, माया नहीं तहां ब्रह्म गियांन ।।
   माया इस माया कर जांन, माया कारणि तजै परांन ।।
   माया जप तप माया जोग, माया बांधे सब ही लोग ।। क. ग्रं. - पृ. 144

अविद्यारूपिणी माया के लिए कबीर दास ने दो विभाग करके झीनी माया और मोटी माया बताया है । विद्यारूपिणी माया का उल्लेख भी कबीर दास ने किया है । उनके अनुसार केवल ब्रह्म ही माया रहित है । विद्यारूपिणी माया केवल साधकों के काम की है । इसी के आश्रय से साधक ब्रह्म तक पहूँच पाते हैं । माया का यह स्वरूप निज स्वरूप के पहिचानने में सहायक है । माया के विद्यारूपिणी स्वरूप को कबीर संतों के लिए उपयुक्त समझते हैं । वे कहते हैं कि इसके आशीश अर्थात् आश्रय से जगदीश का साक्षात्कार संभव है, परन्तु इसे क्लिष्ट साधना के उपरान्त ही पाया जा सकता है ।[1]

श्रीनारायण गुरु के ब्रह्म संबन्धी विचार

श्री नारायण गुरु ने ब्रह्म को एकमात्र सत्य माना है, उस का जन्म मरण नहीं होता । उसका आदि और अंत भी नहीं है । वह शाश्वत सत्य है ।[2] उन्होंने ब्रह्म को जगत् का परम कारण माना है । उन्होंने ब्रह्म और जगत् में कार्य कारण संबन्ध को स्थापित किया है । कारण का कभी परिवर्तन नहीं होता है ।[3]

---

1. माया दासी संत की, ऊँभी देइ असीस ।
   विलसी अरु लातौ छडी, सुमरी सुमरी जगदीश ।। कं.ग्रं- पृ. 33
2. यश्योत्पत्तिर्लयो नास्ति
   तत्परं ब्रह्मनेतरत्,
   उत्पत्तिश्चलयो नास्तिथाति
   भ्रमत्यात्मनी मायया - श्रीनारायण गुरुदेव कृतिकल - दर्शन माला - अपवाददर्शन -3
3. कार्यत्वादसतोत्पास्ति
   करणम् न ह्यतो जगत् ;
   ब्रह्मैव तर्हि सदत -
   दिति मुह्यति मन्दधी : - दर्शन माला - अपवाददर्शन - 5

गुरु देव ने ब्रह्म को स्वयं प्रकाशित कहा है उन्होंने ब्रह्म को आनंद कहा है । पूर्ण सत्य के साक्षात्कार होने पर आनंद ही सत्य स्वरूप में व्यक्त हो जाता है ।[2]

साक्षात्कार के समय होने वाले आनंद रूप सत्य को गुरु देव ने अपनी कृतियों में विभिन्न भागों में व्यक्त किया है । "अनुभूतिदशकम्" में उन्होंने स्वयं अपना अनुभव व्यक्त किया है । सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म की अद्वैतता को गुरुदेव ने व्यक्त किया है । जो कुछ दिखाई देता है सब कुछ सच्चिदानंद रूपी ब्रह्म ही है । ब्रह्म को छोडकर यहाँ कुछ भी नहीं है । जो नानात्व का दर्शन करता है, वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त करता है ।[3] गुरुदेव ने ब्रह्म के निर्गुण रूप को स्पष्ट व्यक्त किया है । वे कहते हैं कि सत्य एक ही होते हैं । असत्य ही सत्य के समान प्रकाशित होता है । शिव लिंग तो शिला ही है, शिल्पि से बनी हुई दूसरी वस्तु नहीं है ।[4]

---

1. चिदेव नान्यदाभाति
   चितः परमतो नहि
   यच्चनाभाति तदसत्
   यदसत्तन्न भातिच - अपवाद दर्शन - 4
2. आनंद एवास्ति भाति
   नान्यः कश्चिदतोऽखिलम्
   विनानन्देन विद्यते - अपवाद दर्शन - 9
3. सर्वम् हि सच्चिदानंदं
   नेह नानास्ति किंचन
   यः पश्यतीह नानेव
   मृत्योर्मृत्युं स गच्छति - अपवाद दर्शन - 10
4. एकं सत्यं न द्वितीयम्
   ह्यसत्यं भाति सत्यवत्
   शिलैव शिव लिंगम् न
   द्वितीयम् शिल्पि नाकृतम् - दर्शन माला - असत्य दर्शन - 10

श्रीनारायण गुरु ने शास्त्रीय रीति से ब्रह्म की अद्वैत स्थिति को व्यक्त किया है । अवयव विश्लेषण से उन्होंने इसका समर्थन किया है ।[1]

श्रीनारायण गुरु ने ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों के संबन्ध में अपना विचार प्रकट किया है । उन के ब्रह्म संबन्धी विचारों में यही विशेषता है कि एक ओर वे सगुण ब्रह्म की प्रतिष्ठा करते हैं तो दूसरी ओर वे दृढ निर्गुणवादी भी है । गुरु जी ने कई मंदिरों की प्रतिष्ठायें की है जो एक ओर उन्हें सगुण ब्रह्म वादी स्थापित करते हैं । लेकिन मात्र इस से उन्हें सगुणवादी कहना ठीक नहीं है । साधारण जनता में चित की एकाग्रता लाने के उद्देश्य से ही उन्होंने सगुण ब्रह्म की कल्पना अनिवार्य मानी और मंदिरों में मूर्तियों की प्रतिष्ठायें कीं । उनकी सगुण दृष्टि निर्गुण की ओर उन्मुख होने की प्रारंभिक स्थिति की द्योतिका है ।

आत्मा :

श्रीनारायण गुरु ने आत्मा को अद्वैत कहा है । उनका विश्वास है कि आत्मा एक है । सभी जीव में स्थित आत्मा एक ही है ।[2] गुरु ने आत्मा

---

1. विभज्यावयवम् सर्व -
   मेकैकम् तत्र दृश्यते
   चिन्मात्रमखिलम् नान्य -
   दिति मायाविदूरगम् - दर्शन माला - अवपाददर्शन - 7
2. अहमहमेन्नरुळुन्नतोके यारा -
   युकिलकमे पलतल्लतेक माकुम्
   अकलुपहन्तयनेकमाकयाली-
   तकयिलहम् पोरुळुम् तुटर्न्निडुन्नू - आत्मोपदेश शतकम् - 11

को स्वयं प्रकाशित कहा है ।[1] उन्होंने आत्मा और परमात्मा को एक ही माना है । वे कहते हैं कि हम सब अखण्ड बोध ही है ।[2] सभी जीव जाल में एक ही परमसत्ता का आभास है ।[3] श्रीनारायण गुरु का विश्वास है कि आत्मा अखण्ड परमात्मा में लीन हो जाती है । ब्रह्म साक्षात्कार की इस अनुपम दशा का सुन्दर वर्णन भी गुरुदेव ने किया है ।[4] वे आत्मा को निर्विकार मानते हैं । इसका कोई परिवर्तन नहीं होता । आत्मा अविनाशी है,

---

1. त्रिभुवनत्तीम कटन्नु तिंगि विंगि
   त्रिपुटि मुटिंजु तेलिंजिटुन्न दीपम्
   कपटयेतिक्कुकरस्थ मावुकिले -
   न्नुपनिषदुक्ति रहस्य मोर्तिटेणम् - आत्मोपदेश शतकम् - 14
2. इरुमुतलायवयेन्नुमिप्रकारम्
   वरुमिनियुम् वरवट्टु निल्पतेकम्
   अरिवतु नानतुतन्ने मट्टुमेल्ला -
   वरुतुतन् वटिवार्न्नु निन्निटुन्नु - आत्मोपदेश शतकम् - 66
3. अवनिवनेन्नरियुन्नतोकेयोर्ता -
   लवनियिलादिनमायोरात्म रूपम् - आत्मोपदेश शतकम् - 24
4. अणुवरिन् महिमाविलंग मिल्ला -
   तणयुमखंडवुमन्नु पूर्ण माकुम्
   अनुभवियातरिवील खंडमाम् चित्
   धनमितु मौन धनामृताब्धियाकुम् - आत्मोपदेश शतकम् - 97

वह न जन्मती है, और न मरती ही है, जन्म स्थिति नाश परिणाम से ऊपर है ।[1] श्रीनारायण गुरु आत्मा को नित्य तत्व मानते हैं ।[2]

माया:

श्रीनारायण गुरु ने "माया दर्शन" में माया का विशद वर्णन किया है । उन्होंने माया को अनिर्वचनीय कहा है ।[3] गुरु ने माया की स्वतन्त्र सत्ता को नहीं माना है । उन्होंने माया को ब्रह्म की शक्ति माना है । गुरु देव ने माया के विविध रूप का वर्णन किया है । विद्या, अविद्या, परा, अपरा, तमस्, प्रकृति आदि विविध रूपों में इसका वर्णन किया है ।[4] वे कहते हैं कि सत्य वस्तु को

---

1. उटयुमिरिकुमुदिकुमोन्नु मारि -
   तुटरुमितिंगुटलिन् स्वभाव माकुम्
   मुटियिलिरुन्नरियुन्नु मून्नुमात्मा-
   विटररु मोन्नितु निर्विकार माकुम् - आत्मोपदेश शतकम् - 83
2. चलमुटलट्ट ननिक्कु तन्टेयात्मा -
   विलुमधिकम् प्रियवस्तु विल्लयन्यम् ;
   विलसिटुमात्मभगतप्रियम् विटाती
   निलयिलिरिपतु कोण्टु नित्य मात्मा । - आत्मोपदेश शतकम् - 93
3. प्रागुत्पन्ये रयथाभावो
   मुदेव ब्रह्मणः पृथक्
   नविद्यते ब्रह्महि या
   सा मायामेय वैभवा । - मायादर्शन - 2
4. न विद्यते या सा माया
   विद्याविद्या परापरा
   तमः प्रधानम् प्रकृति
   बहुधा सैवा भासते - माया दर्शन - ।

दिखानेवाली शक्ति विद्या रूपिणी माया है ।[1] लेकिन अविद्यारूपिणी माया सत्य वस्तु के स्थान पर असत्य को दिखाने वाली है । यहाँ श्री नारायण गुरु ने अविद्या-रूपिणी माया की दो शक्तियाँ बताते हुए उसकी प्रवृत्ति की ओर इशारा किया है । वे बताते हैं कि आवरण और विक्षेप शक्ति अविद्या रूपिणी माया की दो शक्तियाँ हैं । यथार्थ को या सत्य को ढक देना आवरण शक्ति का काम हैं ; और इस के स्थान पर अयथार्थ या मिथ्या वस्तु की प्रतीति कराना विक्षेप शक्ति का कार्य है । रज्जु को सर्प के रूप में दिखा कर उस के यथार्थ स्वरूप को ढक कर भ्रमित करने वाली शक्ति को अविद्या कहते हैं ।[2]

जगत् :

श्रीनारायण गुरु ने सृष्टि की उन्वति के पूर्व की स्थिति का वर्णन किया है । उन्होंने बताया है कि सृष्टि के पहले यह प्रपंच ब्रह्म में लीन था याने ब्रह्म ही था । सृष्टि के पहले यह प्रपंच असत् था । परमेश्वर ने अपने संकल्प मात्र

---

1. अनात्मा न सदात्मा स -
   दिति विधोतो यया\
   सा विद्येयम् यथा रज्जु -
   सर्पतत्वावधारणम् । - माया दर्शन - 3
2. आत्मा न सदनात्मा स-
   दिति विधोतो यया
   सैवा विद्या यथा रज्जु-
   सर्पयोरयथार्थ दृक् - माया दर्शन - 4

से ही इस जगत् का निर्माण किया ।[1] श्रीनारायण गुरु ने व्यक्त किया है कि बीज से अंकुर के समान ब्रह्म शक्ति ने स्वयं इस जगत् की सृष्टि की ।[2] ब्रह्म और जगत् के बीच में कार्य कारण संबन्ध को श्रीनारायण गुरु ने व्यक्त किया है । उनका अटल विश्वास है कि जगत् का कारण ब्रह्म है । जगत् ब्रह्म का कार्य मात्र है । कारण से ही कार्य संपन्न होता है । कारण से कार्य भिन्न नहीं है याने कार्य और कारण एक है । अतः ब्रह्म और जगत् एक है । वास्तव में जगत् नहीं है ।[3] श्रीनारायण गुरु ने जगत् को एक प्रतीति माना है । वास्तवम में जगत् नामक एक वस्तु नहीं है । अन्धकार में रज्जु को देखकर सर्प की प्रतीति जिस प्रकार होती है उसी प्रकार अज्ञान

---

1. आसीदृगयसदेवेदम्
   भुवनम् स्वप्न वत् पुनः
   ससर्ज सर्वम् संकल्प-
   मात्रेण परमेश्वरः - दर्शन माला - अध्यारोप दर्शन - ।
2. प्रागुत्पत्तेरितम् स्वस्मिन्
   विलीन मथा वे स्वतः
   बीजादंगुश्वत् स्वस्य
   शक्तिरेवासृजत् स्वयम् - दर्शन माला - अध्यारोप दर्शन - 3
3. कार्यत्वादसतोवस्यास्ति
   कारणम् न ह्यतो जगत् ;
   ब्रह्मैव तर्हि सदस -
   दिति मुह्यति मन्दधीः - दर्शन माला - अपवाद दर्शन - 5

के कारण ब्रह्म के स्थान पर जगत् की प्रतीति होती है । संकल्प ही इसका कारण है ।[1] श्रीनारायण गुरु ने जगत् को ब्रह्म का विवर्त माना है । वे कहते हैं कि दूध से दही के समान ब्रह्म से ही जगत् होता है ।[2] इस प्रकार अनेक सिद्धान्तों से श्रीनारायण गुरु ने जगत् की मिथ्यात्व को व्यक्त किया है । लेकिन उन्होंने व्यक्त किया है कि व्यावहारिक सत्ता की दृष्टि से जगत् वास्तविक है । याने एक लौकिक व्यक्ति के लिए जगत् सत्य है । लेकिन जीवन मुक्तों के लिए जगत् असत्य है ।[3]

तुलना

समानता:

कबीर और श्रीनारायण गुरु दोनों ने भारतीय दार्शनिक परंपरा का अनुसरण करते हुए ब्रह्म के स्वरूप का सजीव वर्णन किया है । ब्रह्म ही दोनों का

---

1. संकल्प कल्पितम् दृश्यम्
   संकल्पो यत्र विद्यते
   दृश्यम् तत्र च नान्यत्र
   कुत्रचित्रज्जुसर्पवत् - दर्शन माला - असत्य दर्शन - 4
2. आत्मा न क्षीरवद्याति
   रूपान्तरमतोवखिलम्
   विवर्तभिन्द्र जालेन
   विद्यते निर्मितम् यथा - दर्शन माला - असत्य दर्शन - 7
3. सत्यतिलिल्लयुलकम् सकलम् विवेक-
   विध्वम्स्तमाय पिरकुम् विलसुन्नु मुन्पोल
   निस्तर्कमाय् मरुविलिल्लह नीरमेन्नु
   सिद्धिकिलुम् विलसिटुन्नतु मुन्प्रकारम् - अद्वैत दीपिका - 10

प्रिय विषय दिखाई देता है । ब्रह्म को एकमात्र सत्य मानकर सत्य की तलाश या सत्यान्वेषण और सत्य का साक्षात्कार ही दोनों ने जीवन का चरम लक्ष्य माना । कबीर और श्रीनारायण गुरु दोनों ब्रह्म को ही मूल तत्व मानते हैं । दोनों ने ब्रह्म को जगत् का कारण माना है । सच्चिदानंद स्वरूपी ब्रह्म का सजीव वर्णन दोनों ने किया है । ब्रह्म के बारे में नेति नेति प्रक्रिया को दोनों ने स्वीकार किया है । इस प्रकार कबीर और श्रीनारायण गुरु ने ब्रह्म के विश्लेषण में भारतीय दार्शनिक परंपरा को मूल आधार बनाया है ।

अंतर :

कबीर और श्रीनारायण गुरु के ब्रह्म संबन्धी विचारों में थोडा सा अंतर भी दिखाई देता है । कबीर दास केवल निर्गुण वादी थे । उन्होंने निराकार ब्रह्म की ही प्रतिष्ठा की । ब्रह्म को सगुण रूप में बांधना किसी भी हालत में उनके लिए स्वीकार्य नहीं है । लेकिन श्रीनारायण गुरु ने संदर्भानुसार ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों पर बल दिया है । इस प्रकार गुरु का ब्रह्म विचार कबीर के समान मात्र उपनिषदों का अनुवर्ती नहीं रहा । गीता के अनुसार गुरु ने निर्गुण और सगुण दोनों रूपों की प्रतिष्ठा की । जहाँ कबीर के ब्रह्म संबन्धी विचार उपनिषदों तक सीमित रहते हैं वहाँ गुरु के विचार सगुण निर्गुण के समाहार पर आधृत होते हैं ।

अन्य समानतायें :

कबीर और श्रीनारायण गुरु दोनों ने आत्मा और ब्रह्म की एकता को स्थापित किया है । आत्मा और ब्रह्म के बीच में अंशांशी संबन्ध को दोनों ने स्वीकारा है । गीता के अनुसार दोनों ने आत्मा को अज, नित्य,

शाश्वत एवं सनातन माना है । कबीर और श्रीनारायण गुरु दोनों आत्मा को एक सूक्ष्म तत्व मानते हैं । आत्मा न तो जन्म लेती है न मरती है । केवल शरीर ही मरता है । इस प्रकार "जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च" का गीता वाक्य दोनों ने समान रूप से स्वीकार किया है । वस्तुतः आत्मा की संख्या तथा अद्वैतता के संबन्ध में कबीर और श्रीनारायण गुरु उपनिषद् तथा अद्वैत वाद से पूर्ण सहमत है ।

कबीर और श्रीनारायण गुरु दोनों ने रज्जुसर्प सिद्धान्त को स्वीकार करके भारतीय दार्शनिक परंपरा के अनुसार माया को भ्रम रूप माना है । दोनों ने माया को अनिर्वचनीय कहा है । वे दोनों माया की स्वतन्त्र सत्ता को नहीं मानते हैं । वे माया को ब्रह्माश्रित मानते हैं । माया को वे ब्रह्मशक्ति मानते हैं । कबीर और श्रीनारायण गुरु ने भी गीता के अनुसार माया को त्रिगुणात्मिका कहा है । माया का वर्गीकरण दोनों ने किया है । लेकिन तात्विक दृष्टि से दोनों माया को एक ही मानते हैं । इस प्रकार माया के बारे में कबीर और श्रीनारायण गुरु के विचार उपनिषद्, गीता, एवं अद्वैत वेदान्त के अनुकूल ही दिखाई देता है ।

कबीर और श्रीनारायण गुरु दोनों में ब्रह्म की शक्ति, माया से सृष्टि रचना (जगत्) का उल्लेख पाया जाता है । ब्रह्म और जगत् के संबन्ध के बारे में कबीर और श्रीनारायण गुरु दोनों ने अपने समान विचार समान रूपकों के द्वारा व्यक्त किया है । दोनों का अटल विश्वास है कि जगत् का कारण ब्रह्म है । दोनों ने जगत् को केवल एक प्रतीति माना है । कबीर और श्रीनारायण गुरु दोनों ने रज्जुसर्प सिद्धान्त को लेकर जगत् की अवास्तविकता को व्यक्त किया है । इस प्रकार "ब्रह्म सत्यम् जगत् मिथ्या" तत्व को दोनों ने समान रूप से स्वीकार किया है ।

कबीर और श्रीनारायण गुरु दोनों जगत् की व्यावहारिक सत्ता

को अवश्य मानते हैं । इस प्रकार कबीर और श्रीनारायण गुरु दोनों के जगत् संबन्धी विचार भारतीय दर्शन शास्त्र एवं अद्वैत वेदान्त के अनुकूल है ।

उपसंहार :

कबीर और श्रीनारायण गुरु के आध्यात्मिक सिद्धान्त दर्शन शास्त्र की सभी मान्यताओं, परंपराओं तथा सामान्य स्वरूप के अनुकूल है । सभी सिद्धान्तों का एकीकरण उनके दार्शनिक विचार में पाया जाता है । दर्शन शास्त्र का प्रतिपादन ही उनके प्रिय विषय हैं । वे दोनों महान दार्शनिक थे । उनका मूल स्वरूप दार्शनिक है, जिसके अंतर्गत कवि, समाज सुधारक, धर्मोपदेष्टा आदि स्वरूप भी सम्मिलित हैं । कबीर और श्रीनारायण गुरु के सिद्धान्त भारतीय हैं, बाहर के नहीं । भारतीय दर्शन की श्रृंखला-वेद, उपनिषद, भगवद्गीता आदि पर अपनी दृष्टि जमाते हुए कबीर और श्रीनारायण गुरु ने उसी श्रृंखला को और भी उज्ज्वल बनाने का प्रयत्न किया है । उनकी संपूर्ण साधना ब्रह्म के प्रति है । भारतीय दर्शन की सामान्य धारणाओं को कबीर और श्रीनारायण गुरु ने समान रूप से अपनाया है । उनके दर्शन व्यावहारिकता पर आधारित है । उन्होंने अपने सिद्धान्तों में अव्यवहारिकता को प्रविष्ट होने नहीं दिया । वे तो उसी सिद्धान्त तथा उसी बात को अपनाने के पक्ष में है जिसका जीवन में अनुभव किया जा सके तथा व्यवहार किया जा सके । उनके दर्शन जीवनोपयोगी, व्यावहारिक तथा सोद्देश्य हैं । अनेकत्व में एकत्व की स्थापना उनके दर्शन का उद्देश्य है । उनकी दृष्टि में जगत् का मूल तत्व ही सत्य है । उसके अतिरिक्त संपूर्ण विश्व का नामरूपात्मक खेल कुछ भी नहीं है । उन्होंने सकल विश्व के नानात्व में एकत्वपूर्ण अद्वैत तत्व को परिव्याप्त होने की बात कही है । उन्होंने जनसाधारण की सरल भाषा के माध्यम से मूल तत्व को जीते जागते विश्व के बीच दिखाने का प्रयास किया । कबीर और श्रीनारायण

गुरु ने युक्ति और अनुभूति के साथ जड जगत् और आत्म तत्व के संबन्ध को बताते हुए यही सिद्ध किया है कि सब प्राणियों में तथा विश्व के भूतमात्र में एक ही सत्य व्याप्त है । यह तत्व हम ही में है । मूलत: हम सब एक ही हैं अनेक नहीं । इस प्रकार उनके दार्शनिक विचार व्यष्टिगत साधना और समष्टिगत साधना दोनों पक्षों का समान भाव से प्रतिपादन करते हैं । जीवन के सभी क्षेत्रों में समरसता की स्थापना करना दोनों का लक्ष्य था । जीवन के सही लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सभी क्षेत्रों में समरसता की आवश्यकता उन्होंने अनिवार्य मानी । इस की प्राप्ति के लिए संपूर्ण रहस्योद्घाटन का मार्ग भी उन्होंने खोल दिया ।

योग दर्शन

मनुष्य जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य, सब प्रकार के क्लेश, अतृप्ति, वासना आदि पर विजय प्राप्त करके सच्चे सुख शान्ति, आनंद की उपलब्धि माना गया है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सभी विवेकशील व्यक्ति अपनी अपनी प्रकृति, रुचि, बुद्धि के अनुसार तरह तरह के साधनों का आश्रय लिया करते रहे हैं । पर सच्चा ज्ञान प्राप्त करके आत्मा के अंतिम

लक्ष्य कैवल्य या मोक्ष की प्राप्ति के लिए उच्च श्रेणी के साधनों की आवश्यकता होती है । योग मार्ग ऐसे ही साधनों में अन्यतम है । उसमें जिन तथ्यों का प्रतिपादन किया गया है, उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति का मार्ग भी बतलाया गया है । इसी विशेषता के कारण हमारे यहाँ योग मार्ग को सर्वाधिक महत्व प्राप्त है ।

योग के सैद्धान्तिक पक्ष के अतिरिक्त इसकी सब से बड़ी विशेषता व्यावहारिक पक्ष की है । संसार में मनुष्य को भय, विरक्ति, या दुख का जो अनुभव होता है उसका एकमात्र कारण भिन्नता अथवा परायेपन का बोध है । योग ही एक ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा मनुष्य इस सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है और तब वह जगत् में वास्तव में अजात शत्रु होकर विचरण कर सकता है । योग युक्त पुरुष सब पदार्थों में आत्मा का निवास देखता है । इस प्रकार उसको संसार की वास्तविक एकता का ज्ञान हो जाता है और वह समदर्शी बन जाता है ।[1]

---

1. सर्वभूतस्थमात्मानम् सर्वभूतानि चात्मनि
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन : ।
भगवद्गीता - 6-29

भारतीय वाङ्मय में आध्यात्मिक और धार्मिक संदर्भ में योग शब्द का प्रयोग भी विशेष रूप से देखा जाता है । मनुस्मृति में कहा गया है कि योग के द्वारा आत्मा का दर्शन करना सबसे बड़ा धर्म है । वास्तव में मन की एकाग्रता ही योग है ।[1] समत्व योग का अनिवार्य आनुषंगिक गुण है । योग शब्द "युज" धातु से निकला है जिस का अर्थ है मिलना, जुड़ना । यह माना जाता है कि योग वह क्रिया कलाप है जिस से जीवात्मा परमात्मा से मिलती है । योग शब्द के अनेक अर्थ हैं । पातंजल योग दर्शन में चित्त की वृत्तियों के निरोध अथवा वृत्तियों के सर्वथा स्थगित हो जाने को योग कहा गया है । गीता में संयत मन का आत्मा में स्थिर हो जाना योग कहा गया है । उपनिषदों में स्थिर इंद्रिय धारणा को योग कहा गया है । डा. रामकुमार वर्मा का कथन है आत्मा जिस शारीरिक या मानसिक साधना से

---

1. **Basically Yoga is nothing more or less than systematized concentration**

- Gopikrishna -

- The secret of Yoga page 5.

परमात्मा से जुड जाय वही योग है ।[1] दर्शन शास्त्र में योग शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट प्रणाली जिसके द्वारा आत्मा एवं परब्रह्म में एकात्मकता स्थापित की जा सके, होता है ।

योग भारतीय दर्शन एवं हिन्दु धर्म की साधना का प्रमुख अंग रहा है । भारतीय साधकों का स्थान प्राचीन काल से ही योगाभ्यास की ओर गया है । योग मार्ग का उल्लेख वेदों से लेकर परवर्ती साहित्य में निरन्तर होता आया है । लेकिन यह सत्य है कि योग साधना को सुव्यवस्थित और सर्वसुलभ रूप देने का श्रेय महर्षि पतंज्जलि को ही प्राप्त है । अतः यह विदित होता है कि पातंज्जल योग सूत्र तथा अन्यान्य योग ग्रंथों से भी पहले योग विधा का ज्ञान प्राप्त हो चुका था और ऋषि मुनि तथा साधक गण उसका अभ्यास करके लाभ उठाते रहे ।

संत कबीर और श्रीनारायण गुरू एवं योग मार्ग

कबीर के समय जनता में सर्वाधिक प्रभाव पौराणिक धर्म का था । इसके बाद योगियों की प्रबलता रही । कबीर दास सत्संग के बल पर हिन्दु शास्त्रीय मतों को खूब जान गये थे । योग मत, द्वैताद्वैत विलक्षण परमात्मा विश्वास, निर्गुण निराकार की भावना समाधि

---

1. डा. रामकुमार वर्मा - कबीर का रहस्यवाद - पृ. 68

सहजावस्था आदि की संपूर्ण ज्ञान उन्हें अपने कुल गुरु परम्परा से प्राप्त हुआ था ।[1] हठयोगियों का उन पर विशेष प्रभाव रहा था । द्विवेदी जी का कहना है कि कबीर दास ने बाह्याडम्बर मूलक जिन धार्मिक कृत्यों का खण्डन किया है वह थोडी बहुत हठयोगियों की भाषाओं में किया है ।[2] कबीर दास की योगसंबन्धि विचारों की ओर संकेत करने वाली निम्न लिखित उक्ति यहाँ प्रासंगिक रही है । "कबीर दास जी की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पडने से अंकुरित हुई थी ।"[3] कबीर के समय में योगी डटकर जाति भेद पर आघात करते थे, बाह्याडम्बर को अहंकार बताते थे और योगियों के यह विचार कबीर दास के विचारों से बहुत अधिक मिलते थे । योगियों के मन में यह विचार धर कर धर गया था कि केवल योग मार्ग के ज़रिए ही सांसारिक दुर्गति से अपने को उबारा जा सकता है अथवा व्यक्ति को चौरासी लाख योनियों से फटकना पडेगा । कबीर में भी इस प्रकार का विचार आ गया था । उन में जो अक्खडता थी वह उन्हें योगियों के विरासत में मिली थी । यहीं से कबीर दास ने योग के विकट रूपों का भी अवतरण किया । उन्होंने योगियों की भाषा का प्रयोग किया । कबीर दास जिस वंश में उत्पन्न हुए थे उसमें योग चर्चा अत्यन्त मामूली धर्म चर्चा के समान होती थी । बाहर भी योगियों का बहुत ज़बरदस्त प्रभाव था । योगियों की अद्भुत

---

1. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर - पृ. 132
2. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर - पृ. 133
3. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर - पृ. 153

क्रियायें साधारण जनता के लिए आश्चर्य और श्रद्धा का विषय थी ।[1] कबीर पर भी इन योग संप्रदाय का काफी प्रभाव पडा था । उनकी सन्धा भाषा इन्हीं योगियों की देन थी । योगियों के कई पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग कबीर की कृतियों में मिलता है । हठयोग की साधना का कबीर दास ने विशेष चर्चा की है । महाकुण्डलिनी, उसका उत्बोधन, षड्चक्र, सिद्धासन, षड्कर्म, खेचरी मुद्रा, मनोन्मनी अवस्था आदि का वर्णन कबीर के काव्य में देखा जा सकता है ।

महात्मा कबीर ने योग के क्षेत्र में प्रचलित सभी योग साधनाओं का प्रयोग करके स्वानुभूति मूलक सहज योग का प्रतिपादन किया है जिसका पर्यवसान प्रपतिमूल भक्ति योग में हुआ है ।[2]

श्रीनारायण गुरु बचपन से ही यमनियमादि का पालन करते आये थे जहाँ से उनकी योग चर्चा का प्रारंभिक स्वरूप अंकित किया जा सकता है । मूर्कोत कुमार ने कहा है - "स्वामी के बाल्यकाल से संबंधित अधिक जानकारी प्राप्त करना कठिन है फिर भी यह तो निस्संदेह कहा जा सकता है कि योगाभ्यास का प्रारंभिक पाठ यम नियमादि पर जन्म से ही उनका अधिकार था ।[3]

---

1. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर - पृ. 80
2. गोविन्द त्रिगुजायन - कबीर की विचार धारा - पृ. 268
3. मूर्कोत कुमारन-श्रीनारायणगुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम् पृ. 74

गुरुदेव के परवर्ती जीवन में जब वे साधना में लगे हुए घूम रहे थे उस समय लोग उन्हें योगी कहकर पुकारते थे, यही नहीं उनके सारे आचरण एक अवधूत के जैसे थे ।[1] अम्माल नामक किसी महायोगिनी के साथ उनका संबन्ध भी दिखाया गया है । इससे व्यक्त है कि गुरुदेव का योगियों से काफी सम्बन्ध रहा था । पर्वतों पर विचरण करते समय वे हमेशा साधना पथ पर अग्रसर रहते थे । इस समय सिद्धों और योगियों की कई आश्चर्यजनक क्रियायें भी वे दिखाते रहे थे । गुरुदेव मुसलमान सिद्धों के योगाभ्यास से भी काफी परिचित थे ।[2]

घर छोड कर तपस्या एवं योग साधना करते समय चट्टम्पि स्वामी से उनकी भेंट हुई थी जो एक विद्वान एवं योगी थे । श्रीनारायण गुरु के योग सम्बन्धी विचार इन के संग में आकर काफी उत्तेजित हुए थे ।[3] योग मार्ग में चलने के लिए जिस समय उन्हें गुरु की आवश्यकता

---

1. कन्याकुमारी, मुलपल, कोवलम्, तिरुवनन्तपुरम्, अंचुतेंगु आदि स्थानों में समुद्र के किनारे पर स्वामीजी सालों तक अवधूत बनकर रहते थे - मूर्कोत कुमार - नारायण गुरुस्वामियुटे जीवचरित्रम् - पृ. 109
2. बादशाह षाजहान के बेटे दारा के द्वारा लिखे गये रिसला इहक भुमा डिल इसनाबरी आदि ग्रंथों में वर्णित मुस्लिम योग परंपरा भी स्वामी के लिए मान्य थी - मूर्कोत कुमारन - श्रीनारायणगुरु-स्वामिकलुटे जीवचरित्रम् - पृ. 114
3. मूर्कोत कुमारन - श्रीनारायण गुरु स्वामिकलुटे जीवचरित्रम् - पृ. 101.

रही थी उस समय तैकाट अल्लाऊ नामक योगी से उनका संपर्क हुआ और गुरूदेव ने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया । यहीं पर योगाभ्यास का अध्ययन भी शुरू हुआ । इस प्रकार श्रीनारायण गुरु ने तैक्काट अय्याऊ का शिष्यत्व स्वीकार किया । उनसे उन्होंने योगाभ्यास का अध्ययन किया । नौली, धौती, हट आदि क्रियायें विशेष कर खेचरी मुद्रा और अन्य ध्यान योग संप्रदाय का भी अध्ययन उन्होंने किया ।[1] इसके बाद गुरु के निर्देशानुसार उन्होंने मरूत्वामला में जाकर योगाभ्यास का परिशीलन किया ।[2]

योग साधना का सामाजिक पक्ष कबीर और गुरु में

योग शुद्ध आचरण पर बल देता है । सामाजिक आचरण में मंगलकारी तत्वों का विधान योगी का लक्ष्य है । इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कबीर और श्रीनारायण गुरु ने अथक परिश्रम किया था । इसलिए सामाजिक दृष्टि से योग साधना का मूल्यांकन करना अधिक प्रासंगिक है । इसके लिए यम और नियम की ज़रूरत है । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि पाँच यम माने गये हैं । इनके अनुवर्तन से मन, वाणी और शरीर शुद्ध हो जाता है । लोभ, मोह, भय आदि वृतियाँ

---

1. मूर्कोत कुमारन-श्रीनारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम्- पृ. 102
2. मूर्कोत कुमारन-श्रीनारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम्- पृ. 103

दूर हो जाती है और आत्माशुद्ध हो जाती है । किसी भी जीव को पीडा न देते हुए सब से निर्वैर स्थापित करना अहिंसा है । मन, वचन और कर्म के द्वारा सत्याचरण में लगे रहना सत्य कहा जाता है । चोरी न करना अस्तेय है । सब प्रकार के मैथुनों का त्याग करते हुए मन, वाणी और शरीर से शुद्ध रहना ब्रह्मचर्य कहलाता है । अपने उपयोग एवं स्वार्थ के हेतु संपत्ता एवं भोग सामग्री का संचय न करना अपरिग्रह है । इन पाँचों यमों के पालन से मन एवं हृदय निर्मल हो जाते हैं । लेकिन शरीर की स्वच्छता के लिए साधक को नियम का अनुष्ठान करना पडता है । शौच, सन्तोष, तप-स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम है । स्वच्छ शरीर में ही स्वच्छ मन का वास होता है । शौच के ज़रिए शुद्ध शरीर ही स्वाध्याय तप एवं ईश्वर प्रणिधान में लगाया जा सकता है । जप, तप, एवं शुद्ध विचारों के द्वारा ईर्ष्या, घृणा, द्वेष आदि मैलों को धो लिया जा सकता है । फलाशा के विचार से रहित होकर कर्तव्य में अटल रहना, किसी वस्तु के अभाव पर खिन्न न होना, संतोष कहलाता है । शरीर, प्राण और इंद्रियों तथा मन को वशीभूत करते हुए द्वन्द्वों की स्थिति में विक्षेप रहित होना तप कहा जाता है । वेदादि धर्म शास्त्रों का अध्ययन स्वाध्याय है और सब कुछ भगवान के प्रति अर्पित करके जीना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है ।

कबीर दास ने स्थान स्थान पर अपने काव्य में यम नियमादि की ओर संकेत किया है । मन को विकाररहित बनाने केलिए

इनका पालन अत्यन्त अनिवार्य है । अहिंसा पर कबीर ने बल दिया है ।[1] सचेतन प्राणी के प्रति ही नहीं पेड पौधों के प्रति भी कबीर दास जी अहिंसा के तत्व का प्रयोग अनिवार्य मानते हैं ।

प्रत्येक जीव के प्रति निर्वैय रहकर सब के प्रति प्रेम बढाकर समदर्शिता के पालन का उपदेश कबीर दास ने किया है ।

श्रीनारायण गुरु ने भी अहिंसा पर बल दिया है । श्रीनारायण गुरु की "जीवकारूण्य पंचकम्" नामक कृति अहिंसा पर बल देने वाली है । अहिंसा तत्व का परिशीलन करने का उपाय भी गुरुदेव ने किया है ।[2] किसी भी जीवजाल को किसी भी प्रकार की पीडा न पहूँचाना गुरुदेव का लक्ष्य रहा । उनका मन इस के लिए सदा जागरूक था ।[3]

---

1. कबीर ग्रंथावली पदावली - 62
2. कोल्लुन्नतु तंकल वरिल प्रियमा-
   मल्ली विधियार्कु हित प्रदमां
   योल्लेण्डतु धर्ममितारि लु मो-
   त्तल्ले मरूवेण्डतु सूरिकले । गुरुदेव कृतिकल -जीवकारूण्य पंचकम् -3
3. ओरूपीडयेरूपिनुम वरू-
   तरूतेन्नुल्लनुकम्पयुम सदा
   करूणाकरा नल्कुकुल्लिल निन्-
   तिरूमें विट्टकला चिन्तयुम - अनुकम्पा दसकम् - १

सत्याचरण पर कबीर और श्रीनारायण गुरू दोनों ने बल दिया है । कबीर कहते हैं सत्य भावना से प्रेरित होकर ही समस्त कर्म करना चाहिए । वे कहते हैं कि यदि तुम्हारा मन सच्चा है और सत्य भावना से प्रेरित होकर ही समस्त कर्म किये गये हैं तो प्रभु को कर्मों के हिसाब देने में आनंद आयेगा । उस सत्यता के कारण ही प्रभु के उस श्रेष्ठ दरबार में तुम्हारा कोई दामन नहीं पकड सकेगा कोई तुम में कुछ कभी नहीं निकाल सकेगा ।[1] कबीर कहते हैं कि सत्यशील मनुष्य निर्भय रहता है उसको अमर-पद मिल जाता है -

"सांच ही कहत है और सांच ही कहत है,
कांच कूं त्याग कर सांच लाया,
कहै कबीर यूं भक्त निर्भय हुआ,
जन्म और मरण का मर्म भागा ।"[2]

साधक के लिए सत्याचरण आवश्यक है अतः कबीर ने सत्य साहेब, सत्यनाम, सत्य पुरुष, सत्य लोक आदि का प्रयोग किया है ।

श्रीनारायण गुरू ने सत्य पर विशेष बल दिया है । सत्य को उन्होंने सनातन धर्म माना है । यह जगत सत्यवस्तु में आश्रित है ।

---

1. लेखा देणां सोहरा, जे दिल साँचा होइ ।
   उस चंगे दीबानां मैं, पला न पकडू पकडै कोई -
   सांच कौ अंग - 2
2. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर - पृ. 249

अतः सत्य ही बोलना चाहिए झूठ कभी नहीं बोलना ।[1]

कबीर के अनुसार छल कपट से धन अर्जन करना मन में चोरी चोरी किसी का अहित सोचना, आवश्यकता से अधिक सामान का उपभोग करना आदि अनुचित है । विश्व नियंता के द्वारा सभी पदार्थ सभी प्राणियों की आवश्यकता को देखते हुए निर्मित किये हुए हैं । जिसके लिए जितना निर्धारित है, उसी अनुपात से उसे मिलता है । धन संजय के विरुद्ध कबीर विशेष बल देते हैं ।[2]

श्रीनारायण गुरु ने अस्तेय पर विशेष बल दिया है । वे कहते हैं कि चोरी × × ×सभी आपत्तियों का कारण है । चोरी न करना ऐश्वर्य का कारण है । चोरी से अपमान होता है । इसलिए चोरी नहीं करना चाहिए ।[3]

---

1. सति साधु भवेत्सत्यम् सत्यम् ब्रह्म सनातनम्
   सत्येतिष्ठति लोकोयम् वादेसत्यम् न चानृतम्
   श्रीनारायण गुरुदेवन - श्रीनारायण धर्मम् तृतीय सर्ग
2. कबीर ग्रंथावली - पदावली - 99
3. स्तेय सर्वापदाम् हेतुरस्तेय सर्व संपदा
   स्तेयान्मानक्षतिस्तस्मादस्तेयम् सर्वदाचरेत्
   श्रीनारायण गुरुदेवन - श्रीनारायण धर्मम् - तृतीय सर्ग

ब्रह्मचर्य पर भी कबीर ने ज़ोर दिया है । विषय भोग में लीन रहनेवालों की निन्दा कबीर दास करते हैं । कबीर कहते हैं कि जब तक शरीर विषय वासनाओंमें संलिप्त है तब तक नर नारी सभी नरक में पडे हुए हैं ।[1] ब्रह्मचर्य पालन के लिए नारी संग का त्याग करने का उपदेश उन्होंने दिया है ।[2] ब्रह्मचर्य के अनुवर्तन के लिए कबीरदास ने जिह्वा आस्वादन और नारी संग का त्याग करने का उपदेश दिया है ।[3]

श्रीनारायण गुरु का जीवन ही ब्रह्मचर्य व्रत में बनता है । उनके अनुसार ब्रह्मचर्य का पालन करना अति कठिन है लेकिन ब्रह्मचर्य सब से उत्तम है ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का उपदेश गुरुदेव ने दिया है । इसके लिए इन्द्रिय निग्रह को वे अनिवार्य मानते हैं ।[4]

---

1. नरनारी सब नरक है, जब लग देह सकाम ।
   कहै कबीर वे राम के, जे सुमिरे निहकाम - कामी नर कौ अंग - 6
2. कांमणि मींनी पाणि की, जे छेडौं तौं खाई ।
   जे हरि चरणां लागियां, तिनके निकटि न जाइ ।।
   कामी नर कौ अंग - 2
3. कामी नर कौ अंग - 7
4. तदिंद्रियाणि संयमे बुद्धिमानुपरोधयेत्
   इन्द्रियोपरमसत्यम् तपोवर्मनी संश्रयः
   श्रीनारायण धर्मम् - ब्रह्मचर्यम् - षष्ठम सर्ग ।

उपभोग और स्वार्थ के लिए धन संचय न करने का उपदेश कबीर दास ने स्थान स्थान पर किया है । कबीर दास बताते हैं कि मनुष्य की सामान्य आवश्यकता के लिए धन संचय स्वीकार्य है । लेकिन व्यर्थ पेट काट कर धन एकत्रित कर उसे सर्वदा अपने साथ लगाये रहने से कबीर विरोध प्रकट करते हैं ।[1]

धन संचय के बारे में श्रीनारायण गुरु का विचार भी यही है कि धन तो मनुष्य की आवश्यकता के लिए अनिवार्य है । लेकिन सिर्फ धन संचय करने से कोई फायदा नहीं । अधिक धनवालों से उनका अनुरोध है कि गरीबों के लिए अपना धन बाँट देना है । गरीब बच्चों की शिक्षा के लिए, उनकी उन्नति के लिए धनवान लोगों को रूपयों की खर्च करनी चाहिए ।[2] इस से स्पष्ट होता है कि श्रीनारायण गुरु अनावश्यक धन संचय के प्रति विरोध प्रकट करते थे ।

जहाँ तक नियमों का प्रश्न है कबीर दास ने शौच, साधक के लिए अत्यन्त अनिवार्य माना है । संतोष योगी के लिए अनिवार्य है । किसी वस्तु के प्रति आग्रह या तृष्णा साधक में नहीं रहनी चाहिए ।

---

1. कबीर सो धन संचिये, जो आगैं कूं होइ ।
   सीस चढायें पोटली, लो बात न देख्या कोई ।। माया कौ अंग - 13
2. मूर्कोतु कुमारन-श्रीनारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम्- पृ. 264

उनका कहना है कि -

"मनह मनोरथ छांडि दे, तरा किया न होइ ।
पांणी मैं धीप नीकसै, तौ रूखा खाइन ।"

कबीर योगी के लिए अंतकरण की शुद्धि एक परमावश्यक कार्य समझते हैं । उन्होंने कलुषित हृदय के रहते हुए बडी से बडी योग सिद्धि को भी तुच्छ बताया है ।

श्रीनारायण गुरु ने शौच की ओर विशेष रुचि प्रकट की है । उन्होंने पंच शुद्धि के बारे में कहा है । उन्होंने कहा है शरीर शुद्धि, वाक्शुद्धि, मनःशुद्धि, इंद्रिय शुद्धि, गृहशुद्धि ये पाँच शुद्धियाँ मनुष्य के लिए अवश्य है ।[1] देहशुद्धि के बारे में गुरुदेव कहते हैं कि रोज़ स्नान करके सभी इन्द्रियों को शुद्ध करना चाहिए । शुद्ध आहार और पानी का उपभोग करना चाहिए ।[2] वाक्शुद्धि के बारे में वे कहते हैं कि वाक्य स्फुट, मधुर और व्यक्त आकर्षक और सुसभ्य होना चाहिए ।[3] इस प्रकार गुरु ने शौच की ओर विशेष ध्यान दिया है ।

---

1. कायवाक्चेतसाम् शुद्धिरिंद्रियाणाम् गृहस्थ च
   संक्षेपवान्मत्यवर्गस्य पचैता: शुद्धय: - श्रीनारायण धर्मम् - तृतीय सर्ग
2. नित्यम् शुद्धोदकस्नानम् मलस्रोतो विशोधनम्
   शुद्धिर्दन्त नखानाम् च शुद्धवस्त्रस्य धारणम् - श्रीनारायण धर्मम् - तृतीय सर्ग
3. आवर्जकत्वम् वर्णानाम् सुव्यक्ति स्वरमाधुरी
   पदानाम् स्फुटतौचित्यम् लयोमि वयसो गुणे । श्रीनारायण धर्मम् - तृतीय सर्ग

कबीर का तप आन्तरिक है । सहनशीलता की साधना को वे महानता देते हैं । योगी को युक्तिपूर्वक अपने भाव जगत् को शुद्ध करके भगवान में अनन्य श्रद्धा रखनी चाहिए । यहाँ सहनशीलता, विनयशीलता, विनम्रता, धीरता आदि के लिए महान स्थान है । इसी तप के द्वारा योगी अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है ।

श्रीनारायण गुरु ने भी मरूत्वामला में जाकर कठिन तपस्या की थी । वहाँ के जीवन से सहनशीलता, विनम्रता, धीरता आदि गुण उनके जीवन में पूर्वाधिक शोभित हो गये । इस प्रकार उन्होंने अपने भाव जगत् को शुद्ध करके भगवान में अनन्य श्रद्धा रखी । इस प्रकार योग के विशेष आचरण के माध्यम से समाज में नई स्फूर्ति का दोनों ने संचार किया ।

स्वाध्याय के अन्तर्गत साधुजन सेवा ज्ञानी पुरुषों का संपर्क आदि ही कबीर के लिए मान्य है । कबीर अनपढ थे इसलिए पुस्तकीय ज्ञान से वे दूर रहे । संतों के संसर्ग से साधकों के दोष दूर हो जाते हैं, कुबुद्धि का नाश हो जाता है और ज्ञान प्रकाशित हो जाता है । उनका कहना है -

कबीर संगति साध की, बेगि करीजै जाइ ।
दुरमति दूरि गँवाइसी, देसी सुमति बताइ ।।[1]

---

1. कबीर ग्रंथावली, साखी, साध कौ अंग - 2

श्रीनारायण गुरू ने कई महान शास्त्र ग्रंथों का अध्ययन किया था और स्वाध्याय को बडा महत्व दिया था । इसके अलावा कबीर के समान उन्होंने सत्संगति भी की । इस प्रकार स्वाध्याय और सत्संगति से उन्होंने ज्ञानार्जन किया । उनका संपूर्ण जीवन ही इसका निदान है ।

भगवान के प्रति समर्पण भावना कबीर की जन्म सिद्धि थी । कबीर भगवान का कुता है लात भी खाता, मार भी खाता है फिर भी भगवान के चरणों में अपनी पूँछ लगा लगा कर लेटता है । कबीर कहते हैं कि वे राम के कुत्ते हैं और उसके गले में रामनाम की रस्सी बंधी हुई हैं । कुत्ते को उसका स्वामी जिधर चाहता है खींच ले जाता है ।[1]

श्रीनारायण गुरू ने ईश्वर प्रणिधान को अपने जीवन में महत्वपूर्ण स्थान दिया । उनका जीवन ईश्वर प्रणिधान में लगा रहता था । उनकी स्तोत्र कृतियों से यह व्यक्त होता है । कबीर दास के समान गुरू भी भगवान के प्रति समर्पण भाव व्यक्त किया है ।[2]

---

1. कबीर कुत्ता राम का, मुतिया मेरा नांव ।
   गलै राम की जेवडी, जित खींचै तित जाउं ।।
   साखी भाग - निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग - 14
2. गुरूदेव कृतिकल - सुब्रह्मण्य कीर्तन - 1, 2, 10, 8

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर और श्रीनारायण गुरू ने यम नियम के द्वारा मन एवं विचारों पर विजय प्राप्त करने एवं निर्वैर, निस्संग, निरासक्त, निर्मल और निश्चल मन के विकास के विभिन्न भागों का जीवन में अनुसरण करने पर बल दिया है । योग साधना के सामाजिक पद को उभारकर उसकी प्रासंगिकता को महत्वपूर्ण का श्रेय कबीर और गुरू को प्राप्त है ।

निष्कर्ष :

कबीर और श्रीनारायण गुरू के योगसंबन्धी विचारों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों के विचार इस क्षेत्र में समान रहे हैं । आध्यात्मिक साधना के इस अंग को कबीर और श्रीनारायण गुरू ने स्वयं अपना लिया और दोनों ने योग को मोक्ष प्राप्ति का अचूक साधन मान लिया । दोनों ने मन साधना पर सार्थक बल दिया । मन साधना के लिए क्लिष्ट साधनाओं के बारे में दोनों के विचार में भी समानता है । यहाँ दोनों को एक मत है कि मन साधना के लिए क्लिष्ट साधना की कोई अपेक्षा नहीं ।

चौथा अध्याय

कबीर और श्रीनारायण गुरू के सामाजिक विचार

चौथा अध्याय

कबीर और श्री नारायण गुरु के सामाजिक विचार

समाज शब्द की व्युत्पत्ति है - "सम्यक् अजन्ति गच्छन्ति जनाः अस्मिन् इति-समाजः ।" जिस में सभी लोग अच्छी तरह रहते हैं वही समाज है । यहाँ पर व्यक्ति व्यक्ति के बीच में विरोध के लिए कोई स्थान नहीं है । समाज ऐसा एक संगठन होता है जिस में मनुष्यों का एक समूह होता है, एक तरह का पारस्परिक संबन्ध रहता है, मानवीय चरित्र का विकास होता है और एक प्रकार की व्यवस्था भी होती है । अतः आर.एम.मेकाइवर कहते हैं -

"Society is a system of uses and procedure of operity and mutual aid of many groupings and divisions of condoles of human behaviour and literature".[1]

समाज केवल एक ही प्रकार के व्यक्तियों का समूह नहीं है । यहाँ भिन्न भिन्न वेशों के लोग रहते हैं । ये सब अपने भावों और सांस्कृतिक विचार धाराओं को स्वतन्त्रता के साथ व्यक्त कर सकते हैं । यही समाज की विशेषता है । इस प्रकार एक ही समाज में विविध प्रकार की धार्मिक एवं सांस्कृतिक भावनाएँ होती हैं । इस के बारे में स्यूटर ने कहा है कि -

"A society is a permanent and continuing grouping of men, women and children, able to carry on independently the process of racial perpectuation and maintenance on their own cultural lev

1. R.M. Mackaiver and Charles - Society - Pg. 5
2. " " " "

प्रसिद्ध समाज शास्त्री जिन्सबर्ग ने समाज के संबन्ध में यों लिखा है -
"A society is a collection of individuals united by certain relations or modes of behaviour which mark them from others who do not enter into those relations or who differ from them in behaviour"[1]

इस प्रकार समाज ऐसी एक संस्था है जो मनुष्य एवं अन्य कई तत्वों को अपने में समेट कर चलती है । मनुष्य एक समूह जीवी है । वह अकेला कुछ नहीं कर सकता । अनेक व्यक्तियों के मिलन से एक संस्था बनती है जिसे समाज कहा जाता है । समाज का मूलाधार व्यक्तियों का पारस्परिक संपर्क तथा संबन्ध है । समाज और व्यक्ति के बीच में अटल संबन्ध है । वास्तव में सामाजिकता मानवता का अविभाज्य अंग है क्यों कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही समाज का सदस्य होता है ।

दूसरे समाजों की तरह भारतीय समाज की भी अपनी एक संस्था है । इसके संगठन में मुख्यत: दो प्रधान तत्वों को आधार बना दिया है । लौकिक और पारलौकिक । भारत अपनी आध्यात्मिकता के लिए बहुत मशहूर है और सभी भारतीय उस आध्यात्मिकता की ओर अधिक झुकते हैं । फिर भी वे अपने भौतिक चिन्तन की सदा के लिए उपेक्षा नहीं करते । इस प्रकार आध्यात्मिकता के मूल में पली भौतिकता भारतीय समाज की एक विशेषता है । याने भारतीय समाज की नींव आध्यात्मिक है । यही आध्यात्मिकता ही भारतीय समाज का आदर्श है । भारतीय समाज आदर्शों पर बडा ज़ोर देता है । बडों का आदर करना,

---

1. हरगुलाम - मध्ययुगीन कृष्ण काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति - पृ. 4

मातृधर्म, पितृधर्म, पुत्र धर्म, पत्नी धर्म, पति धर्म, भ्रातृ धर्म आदि सामाजिक आदर्शों के विभिन्न रूप होते हैं । सामाजिक आदर्श को बनाये रखने में सत्य, त्याग, दान, परोपकार, दया, अहिंसा जैसे तत्वों का बहुत बडा हाथ रहा है । इन तत्वों में सत्य का महत्वपूर्ण स्थान है । यही भारतीय समाज का आधार है ।

भारतीय समाज के विकास के इतिहास में संत कबीर और श्री नारायण गुरु का विशेष महत्व है । दोनों अपने अपने युग के महान चिन्तक, युगप्रवर्तक, क्रान्तिकारी समाज सुधारक रहे हैं । दोनों महापुरुषों ने अपने अपने युग की विषमताओं को दूर करने का अथक परिश्रम किया । समाज सुधार संबन्धी दोनों के दृष्टिकोण, चिन्तन पद्धति और कार्य शैली में आश्चर्यजनक साम्य है । दोनों की वाणी एवं उच्चादर्शों में अद्भुत क्षमता और प्रेरक शक्ति है जिस से दोनों ने समाज सुधार संबन्धी अपना कार्य प्रशस्त कर दिया । विभिन्न युगों में अवतरित होकर कबीर और श्री नारायण गुरु ने मानव जीवन के विकृत रूप को संवारने, सुधारने, समालंकृत करने की चेष्टा की । दोनों ने आध्यात्मिकता की नींव पर भौतिकता का मकान बनाया । इस प्रकार आध्यात्मिक उन्नति के साथ साथ भौतिक उन्नति का कार्य दोनों ने किया । भारतीय समाज की आध्यात्मिक और भौतिक उन्नति के लिए कबीर और श्री नारायण गुरु ने महान कार्य किया है । इस के फलस्वरूप भारतीय समाज को एक नव जीवन मिल गया ।

कबीर और श्री नारायण गुरु का समकालीन भारतीय समाज

कबीर कालीन भारतीय समाज :

कबीर के समय का समाज, सभी प्रकार से अन्धकारमय था । उस अन्धकाराच्छन्न युग में नैराश्य, भय, उत्पीडन, नर संहार, अशान्ति, दारिद्र्य और आचरण-भ्रष्टता का बोलबाला था । धर्म की कई विचित्र धाराएँ उस समय प्रचलित थीं । धर्म के वास्तविक स्वरूप और उन के तत्व के ज्ञान को थोडे ही व्यक्ति जानते थे । जनता निस्तेज थी । उस समय भारतीय संस्कृति की उन्नति नहीं हो गयी थी । समाज असंगठित बिखरा हुआ और दलित था । हिन्दुओं को दबा दिया गया था । निर्धनता के कारण उनकी बहू-बेटियाँ मुसलमानों के घरों में काम करके आजीविका कमाती थीं ।[1] तत्कालीन हिन्दु जनता अनाचार, अत्याचार तथा स्वेच्छाचार और धर्मान्धता के नंगे नाच से ऊब चुकी थी । वह निराशा, भय, और अशान्ति की शिकार बनी हुई थी । हिन्दु संस्कृति एवं हिन्दु धर्म की प्राचीरें हिल उठी थीं । हिन्दुओं को अपना जीवन भार-स्वरूप हो गया था ।[2]

कबीर युगीन भारतीय समाज की दशा बडी ही शोचनीय थी । समाज के हिन्दु-मुसलमान तथा अन्य वर्गों में धार्मिक एवं व्यावहारिक सभी बातों में आडम्बर बढता जा रहा था । सभी वर्ग असत्य एवं मिथ्यात्व के चक्कर में पडे हुए थे । शासकीय वर्ग का सर्वेसर्वा सुलतान स्वेच्छाचारी होता था । राज्य की

---

1. पी.डी.गुप्ता - मध्यकालीन भारत - पृ. 51
2. डा.रामजीलाल सहायक - कबीर दर्शन - पृ. 54

सार्वभौमिकता उसी में केन्द्रित होती थी ।[1] पर्दे की प्रथा, बालविवाह, बहुविवाह, गुलाम-प्रथा तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों का प्रचलन था ।[2] हिन्दु समाज की वर्णाश्रम-व्यवस्था के कारण समाज में विषमता का ज़ोर था । जाति-पांति तथा भेद-भाव के कारण समाज अनेक अन्ध-विश्वास एवं अज्ञान का शिकार बना हुआ था । शूद्र और म्लेच्छों की छाया से सनातनी वर्णाश्रम धर्मी घृणा करते थे । हिन्दु रूढिवादी तथा अन्धविश्वासी थे । फलित, ज्योतिषी, जादू-टोना और शकुनों आदि शैतानी कलाओं में वे विश्वास करते थे । वे पक्के मूर्तिपूजक थे ।[3] हिन्दु समाज अपनी घोर हीनावस्था में था । उसमें किसी प्रकार का उत्साह शेष न रह गया था । और न कोई स्फूर्ति ही थी । साधारण जनता में शिक्षा की कमी थी । धर्म के नाम पर समाज में अनेक कुप्रथाएँ थीं । जीवहिंसा, मांस भक्षण, मद्यपान, कुचरित्रता, वेश्यागमन आदि घर कर बैठे थे । इतना ही नहीं हिन्दु समाज का मानसिक एवं नैतिक ह्रास हो रहा था ।

---

1. पी.डी.गुप्ता - मध्यकालीन भारत - पृ. 139
2. "पर्दे का रिवाज़ ज़ोर पकड गया था, स्त्रियों की दशा अधिक शोचनीय हो गयी थी । बाल विवाह, बहु विवाह, यद्यपि पुराने रोग थे, इन में वृद्धि हो गयी थी । गुलाम - प्रथा का रिवाज़ अधिक हो गया था । ..... निम्न स्तर के लोगों में अज्ञान एवं अन्धविश्वास का प्रसार व्यापक रूप से बढने लगा था ।" - पी.डी.गुप्ता - मध्यकालीन भारत - पृ. 143
3. एस.आर. शर्मा - भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास - पृ. 175

हिन्दुओं में जाति भेद अति कठोर था । संपूर्ण समाज विभिन्न जातियों में विभाजित हो गया था जिन में परस्पर आदान प्रदान की कम संभावनाएँ रहती थीं । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का समाज में उच्च स्थान था । शूद्रों की दशा पूर्व की अपेक्षा और गिर गयी थी । उनमें स्वयं अनेक जातियाँ उत्पन्न हो गयी थी ।[1]

इस प्रकार जिस लक्ष्य को आधार बनाकर जाति व्यवस्था बनायी गयी थी उसके लक्ष्य अब बिगड चुके थे । कर्म के विभाजन से समाज में सुव्यवस्था स्थापित करना ही जाति व्यवस्था का उद्देश्य था । लेकिन उस में धीरे धीरे परिवर्तन आ गया तो जाति व्यवस्था से गुण के बदले दोष आने लगे । इस प्रकार कबीर के समय तक आते आते प्राचीन भारतीय समाज का रूप काफी बिगड चुका था । कबीर दास जी के समय समाज में जाति-पांति, उच्च-नीच का भेद भाव फैला हुआ था । एक जाति दूसरी जाति को हेय समझकर उसके साथ अभद्र व्यवहार करती थी । सभी ओर पाखण्ड और बाह्याडम्बर का बोल बोला था ।

---

1. The Hindu Society presented a sorry spectacle on the eve of the turkish invasion of our country it was divided into high caste, low caste and untouchables. The caste rules and taboos have become more rigid than in the preceeding centuries. The sudras were divided in two categories. Those of the lower category were looked upon as inferior as the untouchables - Dr. A.L. Srivastava - Medieval Indian Culture Pg. 19.

इस प्रकार तत्कालीन समाज विषमता की मूर्ति, भेद-भाव के कारण जीर्ण-शीर्ण, अनैतिकता से पूर्ण बीभत्स-स्वरूप वाला था तथा घोर पतनावस्था की ओर उन्मुख हो रहा था । बदलती परिस्थितियों में समयानुसार कबीर दास ने कुछ परिवर्तनों के साथ प्राचीन जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था को अपनाया और अपनी कृतियों में बिगडती हुई जाति व्यवस्था की कटु आलोचना करते हुए उस के जनहितकारी रूप पर बल दिया ।

वर्ण एवं जाति व्यवस्था :

कबीर कालीन भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था का बडा महत्व था । उस समय समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि चार वर्णों में विभक्त किया गया था । गुण कर्म के अनुसार नहीं जन्म के अनुसार ही किसी भी व्यक्ति की जाति का निर्णय किया जाता था । इस जाति भेद ने पिछडापन, अस्पृश्यता आदि को जन्म दिया जिस के फलस्वरूप हर कहीं ईर्ष्या, द्वेष एवं वैमनस्य का विकास होने लगा । इस वर्ण व्यवस्था का अंत करना सामाजिक उन्नति के लिए कबीर दास ने अनिवार्य समझा । इस के लिए उन्होंने "जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा जायते द्विजः"[1] वाली उक्ति का समर्थन किया । याने उन्होंने गुण एवं कर्म को ही वर्ण व्यवस्था का मुख्य आधार माना है ।

कबीर दास जी के समय में ऐसी स्थिति थी कि ब्राह्मणों ने

---

1. चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः - भगवद्गीता - 4-3.

जन्म के आधार पर अपनी श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया था । कबीर दास जी ने इसका घोर विरोध किया । उनके विचार में उच्च कुल में जन्म लेने मात्र से कोई महान या आदरणीय नहीं बन जाता । आचरण ही यह सिद्ध करने वाला है कि महान कौन है । उन्होंने अपनी कृतियों में अनेक उदाहरणों से अपने इस उच्च विचार को व्यक्त किया है । वे कहते हैं कि स्वर्ण कलश में मदिरा जिस प्रकार शोभित नहीं होती वैसे ही ऊँचे कुल में उत्पन्न होने मात्र से कोई महान नहीं बन सकता ।[1] इस प्रकार कबीर दास ने जाति व्यवस्था की परंपरागत धारणा को गलत समझकर सच्ची भावना को समाज के सामने रखने का सफल प्रयत्न किया ।

विरोध का स्वर :

ऊँच नीच और छुआछूत का निवारण :

जाति व्यवस्था के फलस्वरूप समाज में ऊंच नीच, छूआ छूत आदि का प्रचार था । मानव और मानव में कोई समानता नहीं थी । अस्पृश्यता को समाज का अभिशाप समझकर कबीर दास ने इसका निवारण करने के लिए कठिन प्रयत्न किया । उन्होंने अपनी वाणी द्वारा सारी दुनिया की निरर्थकता की ओर संकेत करते हुए सारे संसार को ही जूठन कहा । वे पूछते हैं कि इस जूठे संसार में छूआ छूत और अस्पृश्यता के लिए कौन सा स्थान होता है । कबीर कहते हैं कि ऐसा कौन सा स्थान है जहाँ जूठन नहीं । माता-पिता तथा अन्य स्नेही सब जूठे हैं

---

1. ऊंचे कुल क्या जनमिया, जे करणी ऊंच न होइ
   सोवन कलस सुरै भर्या, साधुं निंधा सोइ । - साखी - कुसंगति कौ अंग - 6

झूठे प्रलोभनों में फंसे हुए हैं । अन्न पानी और इसको बनाने वाला सभी तो मिथ्या है । यह भोजन परोसा भी झूठे चमचे से है । कबीर कहते हैं कि केवल वे सच्चे हैं जो विषय-वासना विकारों का परित्याग कर प्रभु भजन करते हैं ।[1] कबीर कहते हैं कि केवल भगवान ही सत्य है और उन्होंने जब नर की सृष्टि की तो किसी प्रकार का छूआ छूत वहाँ नहीं था । जाति-पांति, मान-सम्मान, उच्च नीच का भाव मनुष्य द्वारा बनाया गया है । यह जीव का भ्रम मात्र है । कबीर का कहना है कि इस सृष्टि का आदि नियामक वह ईश्वर ही है । राजा और रंक, राजा और प्रजा, सब उसी की ही सृष्टि है । हम सब में एक ही रक्त संचारित होता है और एक ही प्राणतत्व विद्यमान है । सब मातृगर्भ में दस मास तक रहे हैं और सब को ही सूतक पातक व्यापते हैं । हम को एक ही शक्ति रूपी माता ने जन्म दिया है फिर भला यह कौन सा ज्ञान है जिस से वर्ग भेद की खाई उत्पन्न कर ली गई है ।[2] ब्राह्मणों के छूआ छूत "नौ कनौजिया तेरह चूलहे" के मिथ्याचारों पर व्यंग्य करते हुए कबीर कहते हैं कि सर्वत्र एक ही जल और वायु है किन्तु फिर भी

---

1. माता जूठी पिता पुनि जूठा, जूठे फल चित लगे ।
   जूठा आंवन जूठा जांनां, चेतहु क्यूं न अभागे ।।
   अंन जूठा पांनी पुनि जूठा, जूठे बैठि पकाया ।
   जूठी कछुछी अंन परोस्या, जूठे जूठा खाया ।।
   चौका जूठा गोबर जूठा, जूठी का ढीकारा ।
   कहै कबीर तेई जन सूचे, जे हरि भजि तजहिं बिकारा - क.ग्रं. - पदावली भाग-25
2. ओंकार आदि है मूला, राजा परजा एकहि सूला ।
   हम तुम्ह मांहै एकै लोहू एकै प्रांन जीवन है मोहू ।।
   एकहि बास रहै दस मासा, सूतक पातग एकै आसा ।
   एकहि जननीं जन्यां संसारा, कौंन ग्यांन थैं भये निनारा ।।
   रमैणी भाग - चौपदी रमैणी

अपना भोजन अलग बनाकर उन्होंने तुष्टि अनुभव की कि हम श्रेष्ठ है । जब उन्होंने मिट्टी से ही चौके को लीपा है तो फिर भला छूत कहां बची रही ? और क्या मनुष्य मिट्टी से भी निकृष्ट है जिस से वह अपने चौके का बचाव करता है । चौके को लीप कर उसे और अधिक पवित्र रखने के लिए उसके चारों ओर सीमा-रेखा बांध दी । कबीर कहते हैं कि इस आचरण में कौन सी बुद्धिमता और श्रेष्ठता है, इन मिथ्याचारों से किस भांति संसार समुद्र पार करोगे ? यह पाखण्ड तथा व्यर्थ का मान-सम्मान, ऊंच-नीच भेद जीव का भ्रम मात्र है । मानव मानव सब समान है, सब एक ही भगवान से बनाये हुए हैं, कोई ऊँचा नहीं है । सब को उन्नति करने का समान अधिकार है, ये कबीर के क्रान्तिकारी विचार थे । इस प्रकार युग युगान्तर से शोषित, पीडित, दलित तथा त्रस्त शूद्र समाज के उद्धार का महत्वपूर्ण कार्य कबीर दास ने किया है ।

---

1. एकै पवन एकहि पांणी, करी रसोई न्यारी जांनीं ।
   माटी सूं माटी ले पोती, लागी कहौ कहां धूं छोती ।।
   धरती लीजि पवित्र कीन्हीं, छोति उपाय लीक बिचि दीन्हीं ।
   याका हम सूं कहौ बिचारा, क्यू भव तिरिहौ इहि आचारा ।।
   ए पाखण्ड जीव के भरमां, मांनि अमांनि जीव के करमां ।
   करि आचार जु ब्रह्म संतावा, नांव बिनां संतोष न पावा ।।
   रमैंणी भाग - चौपदी रमैंणी ।

मानव की समानता एवं एकता :

कबीर दास ने मानव की समानता एवं एकता पर विशेष बल दिया । कबीर के अनुसार सभी मानव समान हैं । उन में भेद भाव का कोई अर्थ नहीं है । ब्राह्मण और शूद्र में कोई भेद नहीं है । दोनों का शारीरिक गठन समान है । ईश्वर ने सभी की सृष्टि समान रूप से की है । इसलिए मानव मानव के बीच में भेद भाव के लिए कोई स्थान नहीं है । अतः कबीर ऊँचे स्वर में कहते हैं कि ब्राह्मण और शूद्र सब समान है । वे कहते हैं कि समस्त मनुष्य एक ही वीर्य की बूंद से उत्पन्न हुए हैं । सब समान रूप से मलमूत्र का त्याग करते हैं । सब में एक ही चर्म और समान माँस है । सब का जन्म परम ज्योति स्वरूप एक ब्रह्म से ही है फिर भला ब्राह्मण और शूद्र का अंतर कैसा ?[1] कबीर कहते हैं कि समस्त जीव समान हैं क्योंकि सभी के शरीर एक ही साँचे में ढले हुए हैं इसलिए कोई उच्च और कोई निम्न नहीं है । समस्त जीवों का मूल उत्स एक ही है । उच्चता पर गर्व करने वाले ब्राह्मणों ने शेष लोगों के समान ही मातृ गर्भ से जन्म लिया, अन्य मार्ग से नहीं ।[2]

---

1. एक बूंद एकै मल मूतर, एक चाम एक गुदा ।
   एक ज्योति थैं सब उतपनां, कौन बांम्हन कौन सूदा ।।
   पदावली भाग - 57
2. उत्पाति व्यंद कहां थैं आया, जा धरी अरु लागी माया ।
   नहीं को ऊंचा नहीं को नीचा, जाका प्यंड ताही का सींचा ।।
   जे तूं बांमन बमनी जाया, तौ आंन बाट है काहे न आया
   पदावली भाग - 41

ब्राह्मणों की सामन्ती प्रवृत्ति का उन्मूल नाश करने का प्रयत्न कबीर की कृतियों में सर्वत्र विद्यमान है ।[1]

हिन्दु मुस्लिम एकता के लिए कबीर दास ने कठिन प्रयत्न किया । धर्म के नाम पर दोनों में घोर विरोध होता था । जाति भेद को भूल कर समस्त मानव को एकता के सूत्र में बाँधने का महान कार्य कबीर दास ने किया है । उन्होंने कटु आलोचना के ज़रिए हिन्दु और मुसलमानों के बीच में एकता स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया । कबीर दास जी बताते हैं कि सब धर्मों का बिन्दु तो एक ही है केवल मात्र उनकी आचरण पद्धति में अन्तर है । हिन्दु और मुसलमानों ने अपने अपने आराध्य को पृथक् पृथक् स्वीकार कर इस सत्य को विस्मृत कर दिया और हठधर्मी से ऐक ने माला को और दूसरे ने तसबी को अपनाया । लेकिन मनुष्य के शरीर में बोलने वाली आत्मा न तो हिन्दु है और न मुसलमान - वह इस भेद बुद्धि से परे है ।[2] कबीर दास ने ऊँचे स्वर में घोषित किया कि हिन्दु और मुसलमान सब एक है । वे कहते हैं कि तू अपने उचित मार्ग का अवलम्बन कर क्योंकि ऊपर-नीचे अत्र-तत्र-सर्वत्र

---

1. " Kabir came to deny Brahmanical authority and all Hindu dieties and rituals". - M .Baber - The Hindu Religion. Pg. 324

2. जोनि उपाइ रची दै धरनीं, दीन एक बीच भई करनीं ।
   रामं रहिम जपत सुधि गई, उनि माला उनि तसबी लई ।।
   कहै कबीर चेतहू रे भौंदू, बोलनहारा तुरक न हिन्दु ।।
   पदावली भाग - 56

वही सर्वशक्तिमान एक ही ब्रह्म बसा हुआ है । हिन्दु और मुसलमान दोनों का निर्माता एक ही ब्रह्म है, उसकी गति को कोई नहीं देख पाता ।[1] वे सब मत - मतान्तरों द्वारा आराधित प्रभु को नामों की विभिन्नता होते हुए भी एक ही मानते है । हमें तो प्रभु राम, रहीम, केशव, अल्लाह समस्त रूपों में समान भाव से मान्य है । बिस्मिल्लाह न कहकर यदि उसे विश्वंभर कह दिया जाय तो भी वह वही प्रभु रहेगा कोई दूसरा नहीं । मुसलमान मस्जिद एवं हिन्दु मन्दिर में प्रभु का वास मानते है, इस प्रकार वे राम और अल्लाह में भेद उत्पन्न कर देते हैं । कबीर कहते हैं कि मन्दिर और मस्जिद न होने पर भी सर्वशक्तिमान प्रभु का शासन होता है । अतः हिन्दुओं और मुसलमानों को व्यर्थ अपने बीच भेद भाव की दीवार खडी कर त्रुटिपूर्ण आचरण करने की कोई आवश्यकता नहीं ।[2]

हिन्दु और मुसलमानों के बीच में होने वाले धार्मिक आडम्बरों की कटु आलोचना भी कबीर दास ने की । वे कहते हैं कि गंगा जल में स्नान करने

---

1. कहै कबीरा दास फकीरा, अपनी रहि चलि भाई ।
   हिन्दु तुरक का करता एकै, ता गति लखी न जाई ।।
   पदावली भाग - 58
2. तुरक मसीति देहुरै हिन्दु, दहूं रामं खुदाई ।
   जहाँ मसीति देहुरा नांही, तहां काकी ठकुराई ।।
   हिन्दु तुरक दोऊ रह तूटी, फूटी अरु कनराई ।
   अरध उरध दसहूँ दिस जित तित, पूरि रहा रामं राई ।।
   पदावली भाग - 58

और शरीर में भस्म लपेटने से क्या लाभ है ? ये सब करते हुए तुम अपने अवगुणों पर इन बाह्याडम्बरों का पर्दा डाले रहते हो । इस जप, तप, स्नान, ध्यान का क्या लाभ है और मस्जिद में माथा टेकने का क्या प्रयोजन है । रोजा रखे, नमाज़ पढे, हज काबा की धार्मिक यात्रा का, ब्राह्मण के वर्ष में चौबीस एकादशी व्रत रखने का एवं काजी के मुहरम मनाने का कोई लाभ नहीं यदि ये प्रत्येक जीव को, प्रत्येक मनुष्य को समान नहीं समझते । वे बताते हैं कि जो ईश्वर केवल मस्जिद में रहता है तो फिर अन्य संसार की अवस्थिति कैसे हैं ? तीर्थ और पत्थर प्रतिमा दोनों में ही भगवान को बनाते हैं किन्तु वास्तविकता यह है कि दोनों में से कहीं भी उसके दर्शन प्राप्त न हुए । मुस्लिम मानते हैं कि पश्चिम दिशा में अल्लाह का निवास है, इसलिए वे उधर ही मुख करके नमाज़ पढते हैं, दूसरी ओर हिन्दु मानते हैं कि वह पूर्व में है, इसलिए पूर्व को मुख करके ही सन्ध्योपासना आदि कर्म करते हैं ।

जाति भेद को दूर करने के लिए कबीर दास ने उपदेश दिया कि किसी से जाति नहीं पूछना चाहिए । किसी भी प्रकार के भेद भाव के बिना ईश्वर भक्ति करने का अवसर कबीर दास ने सब के सामने प्रदान किया ।

---

1. क्या ले माटी मुइं तूं मारै, क्या जल देह न्हवायें ।
   जार करै मसकीन सतावै, गुंन हीं रहै छिपायें ।।
   क्या तू जू जप मंजन कीयै, क्या मसीति सिर नाये ।
   रोजा करैं निमाज़ गुजारै, क्या हज काबै जायें ।।
   ब्राह्मण ग्यारसि करै, चौबीसौं, काजी महरम जांना ।
   ग्यारह मास जुदे क्यूं कीये, एकहि मांहि समान ।।

   पदावली भाग - 259

"जाति पाँति पूछै नहिं कोइ
हरि को भजै सो हरि का होई" के अनुसार भक्ति के द्वार सब के लिए खुले हुए । इस प्रकार कबीर दास जी अपने विचारों में दृढ रहे और मानव समानता पर जीवन भर बल देते रहे ।

धर्म और धार्मिक संस्कार :

भारतीय समाज पुरातन काल से ही अनेक प्रकार के धर्माचरणों से बांटा हुआ है । मानव को पशु से भिन्न बनाने के लिए धर्माचरण की आवश्यकता है । कबीर कालीन भारतीय समाज में धर्म के नाम पर अन्धविश्वास पनप रहा था । यह जीवन को सुगम और सुसंस्कृत बनाने की अपेक्षा उसको कष्ट और असंस्कृत बनाने वाला था । धर्म का वास्तविक स्वरूप समाज से लुप्त हो रहा था । इस के स्थान पर बाह्याडम्बर ही शेष रह गया । ईश्वर का स्वरूप, ईश्वर की प्रतिष्ठा, ईश्वर की भक्ति, व्रत, अनुष्ठान तथा त्योहार तीर्थ, पाप-पुण्य, भाग्य कर्म आदि के बारे में गलत धारणाओं का प्रचार हो रहा था । कबीर दास ने धर्म के नाम पर प्रचलित इन सभी बाह्याडम्बरों का एकदम विरोध किया । धर्म के वास्तविक स्वरूप की पुनप्रतिष्ठा का महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने किया ।

कृपावान ईश्वर की प्रतिष्ठा :

कबीर दास ईश्वर विश्वासी थे । उनका समाज भी ईश्वर पर आस्था रखनेवाला था । लेकिन ईश्वर के बारे में लोगों की धारणा गलत थी ।

इसलिए कबीर दास ने अपनी कृतियों में ईश्वर संबन्धी विचारों को स्पष्ट करना अपना कर्तव्य समझा । ईश्वर को कृपालू और दयालू के रूप में चित्रित करना इसका उदाहरण है । कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य तू चिन्तामणि के लिए अन्यत्र क्यों भटकता है, वह ब्रह्मरूप चिन्तामणि तो चित में ही है उस में ही समस्त वृतियों को लगा दे फिर तुझे चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं पडेगी । क्योंकि वह परम कृपालू ईश्वर चिन्तामुक्त होते हुए भी सब की चिन्ता रखता है । यही उसका दयालु स्वभाव है । ईश्वर की खोज में इधर उधर भटक कर समय और शक्ति को बरबाद करने वाले लोगों से कबीर कहते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापी है ; वह तो सब घर और अघर में बसा है । वे कहते हैं कि कैसी विडम्बना है कि मृग की नाभि में ही कस्तूरी का वास है किन्तु वह उसकी खोज में वन वन भटकता है, ऐसे ही प्रभु का प्रत्येक मनुष्य के हृदय में निवास है किन्तु कोई उसे देख नहीं पाता इस तरह कबीर दास जी ने अपनी कृतियों के द्वारा ईश्वर के सच्चे स्वरूप को समझाकर लोगों के मन में ईश्वर संबन्धी उच्च विचारों को उद्दीप्त किया ।

---

1. च्यंतामणि मन मैं बसै, सोई चित मैं आंणि ।
   बिन च्यंता च्यंता करै, इहै प्रभु की बांणि ।।

   साखी भाग - बैसाख कौ अंग - 5

2. कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढै बन मांहि ।
   ऐसैं घटि घटि रामं है, दुनियां देखै नांहि ।।

   साखी भाग - कस्तूरियां मृग कौ अंग - ।

कबीर दास जी के समय में समाज में मूर्तिपूजा का बाहुल्य था । कबीर दास मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे । वे कहते हैं कि पत्थर को पूजने से कोई लाभ नहीं होता । ईश्वर को वे निर्गुण और निराकार मानते हैं । निराकार ईश्वर के साक्षात्कार को ही कबीर मानव जीवन का लक्ष्य समझते हैं । मूर्तिपूजा का विरोध करते हुए कबीर दास बताते हैं कि अज्ञानी मनुष्य विभिन्न महत्वाकांक्षाओं के वशीभूत होकर पत्थर पूजकर व्यर्थ अपने आत्म सम्मान को नष्ट करता है क्योंकि वह मनुष्य होकर पत्थर के सम्मुख झुकता है । कबीर के अनुसार आत्म सम्मान की रक्षा और भक्ति की प्राप्ति दोनों निर्गुण के माध्यम से ही हो सकती हैं । इस प्रकार कबीर दास ने ईश्वर की प्रतिष्ठा का सीधा और सरल मार्ग समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया ।

आचारों की अर्थ हीनता :

कबीर दास जी के समय में समाज में भक्ति के नाम पर जप, तप, व्रत, अनुष्ठान तथा तीर्थों का बाहुल्य था । कबीर कालीन समाज में इनका महत्व इतना था कि लोग इन्हें ही धर्म समझते थे और धर्म के वास्तविक स्वरूप के बारे में लोग बिलकुल अनभिज्ञ ही रहे । कबीर दास ने इन सबका एकदम विरोध किया । उन के मत में ये सब धर्म के नाम पर प्रचलित बाह्याडम्बर मात्र हैं ।

---

1. पांहन कु का पूजिए, जे जनम न देई जाब ।
   आंधा नर आसामुषी, यौंहीं खोवै आब ।।
   -साखी भाग - भ्रम विधौंसण कौं अंग - 3

उनका दृढ़ विश्वास था कि धर्म के वास्तविक स्वरूप को मनुष्य के हृदय में प्रतिष्ठित करने के लिए इन व्रत, अनुष्ठान तथा तीर्थों का बहिष्कार अनिवार्य है । उनकी वाणी में यत्रतत्र ये विचार व्यक्त हुए हैं । इन बाह्याडम्बरों की हँसी उडाने में कबीर सब के आगे है । वे बताते हैं भला इन बालों ने क्या अहित किया जो इनको बारम्बार मुंडा देता है । तू अपने मन को विषय विकारों के प्रभाव से हटाकर स्वच्छ क्यों नहीं करता ? यह मन ही तो विषय वासनाओं का केन्द्र है ।[1] माला पहनने के बारे में कबीर दासजी बताते हैं कि वास्तविक माला तो मन की ही है जिसे संसार से फिराकर प्रभु-भक्ति में लगाना है और सब मालाएँ तो सांसारिक, बाह्य, प्रदर्शन मात्र है । यदि माला के धारण करने से ही प्रभु-प्राप्ति हो जाती है तो रहट को भी प्रभु प्राप्ति हो जाती ।[2] वे कहते हैं कि माला धारण करने से प्रभु-प्राप्ति सिद्ध नहीं होती, व्यर्थ शरीर ही इसके भार से दबकर मरता है । इस प्रकार बाह्य वेश-भूषा के आडम्बर से साधु बनने से कोई लाभ नहीं होता । उनके अनुसार जप, तप , तीर्थ, व्रत एवं विभिन्न देवताओं में विश्वास सब निस्सार दृष्टिगत होता है । इन के ऊपर आश्रित व्यक्ति अंत में उसी प्रकार निराश होता है

---

1. केसों कहा बिगडिया, जे मूँडै सौ बार ।
   मन कौ कहै न मुंडिए, जामैं बिषै बिकार ।।
   साखी भाग - भेष कौ अंग - 12
2. कबीर माला मन की, और सँसारी भेष ।
   माला पहर्या हरि मिलै, तो अरहट कै गलि देष ।।
   साखी भाग - भेष कौ अंग - 6

जैसे तोता सेंवल के फल के ऊपर आश्रित रहकर निराश होता है ।[1] कबीर दास जी बताते हैं कि इस शरीर में ही करोडों काशी जैसे तीर्थ है । इस शरीर में ही लक्ष्मी पति वैकुण्ठवासी भगवान विष्णु विद्यमान है ।[2] ब्राह्मण के वर्ष में चौबीस एकादशी व्रत रखने का एवं काजी के मुहरम मनाने का कोई लाभ नहीं है । गंगा स्नान और काशी यात्रा के बारे में कबीर दास ने क्रान्तिकारी विचार प्रकट किये हैं - चाहे कोई शिव नगरी काशी में निरन्तर वास करे, उसे अपना घर ही बना ले और पाप नाशिनी गंगा का पवित्र जल पीये तो भी मुक्ति संभव नहीं है ।[3] वस्तुत: भक्ति के नाम पर किये जाने वाले जप, तप, व्रत और कई तरह के अनुष्ठान जैसे माला फेरना, सिर मुण्डन करना, छापा तिलक लगाना आदि के विरुद्ध कबीर दास ने अपना विचार प्रकट किया है ।

---

1. जप तप दीसै थोथरा, तीरथ व्रत बसास ।
   सूनै सेंबल सेंविया, यौं जग चल्या निरास ।।
   साखी भाग - भ्रम बिधौंसण कौं अंग - 8
2. काया मधे कोटि तीरथ, काया मधे कासी ।
   काया मधे कवलापति, काया मधे वैकुण्ठवासी ।।
   पदावली भाग - 171
3. कासी कांठै घर करै, पीवै निर्मल नीर ।
   मुकति नहीं हरि नांव बिन, यौं कहै दास कबीर ।।
   साखी भाग - चांणक कौ अंग - 19

सामाजिक नीति का स्वरूप :

किसी भी समाज के लिए न्याय और नीति की अनिवार्यता होती है । कबीर दास के समय में समाज में न्याय और नीति का अभाव था । इस कारण कबीर कालीन भारतीय समाज और भी अधिक दलित और शोषित होता गया । इसलिए कबीर दास ने सामाजिक नीति पर विशेष बल दिया । अहिंसा, सत्य, दया, परोपकार आदि पर कबीर ने विशेष बल दिया है । अहिंसा को परम धर्म मानकर कबीर दास ने इसकी प्रशंसा बार बार की है । अत: जीव हत्या और मांस भक्षण का उन्होंने विरोध किया । वे कहते हैं कि जीव वध करना भारी अपराध है । ईश्वर तो सब जीवों के प्रति न्याय और दया चाहते हैं । इस संबन्ध में कबीर का विचार है कि जब ईश्वर के द्वार पर खूनी खडा होगा तो इसके मुख पर ताबड-तोड प्रहार किये जायेंगे । इसे भी वैसी ही यातना दी जायेगी जैसी यह निरीह जीव को देता है ।[1] कबीर कहते हैं कि जीव वध के लिए जब हाथ में कटार लेते हैं तब यह काजी और मुल्ला अपने हृदय से पूर्ण रूप से धर्म की विस्मृति कर देते हैं ।[2] अहिंसा के समान सत्य पर भी कबीर दास ने विशेष बल दिया । वे कहते हैं कि यदि किसी का मन सच्चा है और सत्य भावना से प्रेरित होकर ही समस्त कार्य

---

1. जोरि कियां जुलम है, मांगै न्याव खुदाइ ।
   खालिक दरि खूनी खडा, मार मुहे मुहिं खाइ ।।
   साखी भाग - सांच कौ अंग - 9
2. काली मुलां झंभिया, चल्या दुनीं कै साथि ।
   दिल थैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि ।।
   साखी भाग - सांच कौ अंग - 7

उसने किये हैं तो प्रभु के सामने उन कर्मों का हिसाब देने में आनंद आयेगा, प्रसन्नता होगी । उस सत्य निष्ठा के कारण प्रभु के उस श्रेष्ठ दरबार में कोई उसका दामन नहीं पकड सकता उस के कोई कमी नहीं निकाल सकता ।[1] सभी कार्य सत्य पर आधारित रखने पर कबीर दास ने बल दिया है । सत्य को नकारने वाले की उपासना व्यर्थ है उसका कोई प्रयोजन नहीं ।[2]

मनुष्य के लिए दयालु होना है । ईश्वर प्राप्ति के लिए दयालु होना अनिवार्य है । कबीर कहते हैं कि हृदय की विशालता, दयालुता एवं प्रभु दर्शन के बिना स्वर्ग प्राप्ति नहीं होगी ।[3] कबीरदास ने वास्तव में जनसेवा को ही नारायण सेवा मान ली थी । उनका दृढ विश्वास है कि जनसेवा से ही ईश्वर प्राप्ति होती है । इस के बारे में कबीर दास जी बताते हैं कि जिस स्वामी-ब्रह्म का सौन्दर्य देखा गया वह अशरीरी था ; निराकार के सौन्दर्य का ही वह दर्शन था ।

---

1. लेखा देणां सोहरा, जे दिल साँचा होइ ।
   उस चंगे दीवांन मैं, पला न पकडै काइ ।।
   साखी भाग - सांच कौ अंग - 2
2. यहु सब झूठी बंदिगी, बरियां पंच निवाज ।
   साचै मारै झूठ पढि, काजी करै अकाज ।।
   साखी भाग - सांच कौ अंग - 5
3. बेअकली अकलि न जानही ; भूले फिरै ए लोइ ।
   दिल दरिया दीदार बिन, भिस्त कहां थै होइ ।।
   रमैणी भाग - अष्टपदी रमैंणी ।

यह उसी के समान था जैसे कोई सूर्य और चन्द्र न देखकर केवल मात्र उनके प्रकाश का दर्शन करे । सत्य तो यह है कि प्रभु जन सेवा से ही प्राप्य है, उस में भक्त भी निश्चित हो जाता है ।[1]

परोपकार करने पर कबीर दास ने ज़ोर दिया है । खजूर के पेड के उदाहरण से इसे समझाया भी है । खजूर के पेड से क्या लाभ ? पक्षी को दूर तक छाया तक नहीं मिलती और फल इतने ऊँचाई पर लगते हैं कि उसका लाभ भी सब नहीं उठा सकते ।[2] इस प्रकार परोपकार की भावना से वंचित लोगों को कबीर दास बेकार सिद्ध करते हैं ।

मनुष्य को पशु से मानव बनाने के लिए सात्विक भोजन की जो आवश्यकता है इस पर भी कबीर दास ने इशारा किया है । यहाँ कबीर ने मांस भक्षण और मदिरा के विरुद्ध विशेष बल दिया है । वे कहते हैं कि पापी लोग पूजा के नाम पर आनंदपूर्वक बैठकर मांस और मदिरा का सेवन करते हैं । ऐसे पापियों

---

1. कौतिग दीठा देह बिन, रवि ससि बिना उजास ।
   साहिब सेवा मोहि है, बेपरवाहीं दास ।।
   साखी भाग - परचा कौ अंग - 2
2. जालौं इहै बडपणां, सरलै पेडि खजूरि ।
   पंखी छांह न बीसवें, फल लागैं ते दूरि ।।
   साखी भाग - निरगुणां कौ अंग - 10

की मुक्ति संभव नहीं है । उन्हें करोडों नरकों की यातनायें भोगनी पडेंगी ।[1] कबीर दास ने धर्म और नीति की पुनः प्रतिष्ठा के माध्यम से समाज में प्रचलित कुरीतियों का निर्मार्जन करना चाहा ।

पारिवारिक जीवन :

परिवार समाज की सब से छोटी इकाई है । समाज के निर्माण में परिवार का प्रमुख स्थान है । परिवार की उन्नति से ही समाज की उन्नति संभव है । आदर्श पारिवारिक जीवन से एक सुन्दर समाज की कल्पना कबीर दास ने की है । इसलिए पारिवारिक जीवन के प्रति कबीर के मन में आस्था थी । पारिवारिक जीवन के अन्तर्गत पिता-पुत्र संबन्ध, पति-पत्नी संबन्ध आदि बातें प्रमुख मानी जाती है । पति पत्नी के बीच में अटूट संबन्ध का होना पारिवारिक जीवन के लिए अनिवार्य है । कबीर दास ने त्याग पूर्ण जीवन बितानेवाली गृहलक्ष्मी पति सेविनी सती नारी की प्रशंसा स्थान स्थान पर की है । कबीर के अनुसार पत्नी को पति के लिए अपना सर्वस्व समर्पण करना चाहिए । सुखमय जीवन के लिए विशुद्ध प्रीति भाव को कबीर ने अनिवार्य समझा है । कबीर के अनुसार गृहस्थ जीवन केवल भोग के लिए नहीं होता वरन् धर्म के हेतु होता है । नारी जीवन में सतीत्व एवं पातिव्रत्य धर्म का स्थायेत्व वे चाहते हैं । पारिवारिक जीवन में कबीर दास ने पति पत्नी संबन्ध को ही प्रधानता दी है ।

---

1. पापी पूजा बैसि करि, भषैं मांस मद दोइ ।
   तिनकी दष्या मुकति नहीं, कोटि नरक फल होइ ।।
   साखी भाग - सांच कौ अंग - 13

नारी भावना :

कबीर की आदर्श नारी पतिव्रता है । उन्होंने नारी के इस स्वरूप को उच्च बताकर एकनिष्ठा और त्याग को वन्दनीय बताया । नारी के वात्सल्यपूर्ण माता रूप के प्रति भी कबीर के हृदय में श्रद्धा की भावना है । कबीर ने नारी को भक्ति की अधिकारिणी माना । आकर्षणमयी नारी कबीर की सदा भर्त्सना एवं निन्दा की पात्र है । वे बताते हैं कि स्त्री समस्त सांसारिक विषयों की जूठन है । यही व्यक्ति के भले-बुरे का भेद बताती है । जो इस से दूर रहते हैं वे ही श्रेष्ठ है और जो इसके संसर्ग में रहते हैं वे नीच हैं ।[1] नारी के आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के संबन्ध में कबीर क्यों मौन रहे, यह बात समझ में नहीं आती । लगता है कि युगीन मान्यताओं के अनुसार मौन धारण करना ही उचित था ।

आश्रम धर्म :

प्राचीन भारतीय समाज में आश्रम धर्म पर बडा ही बल दिया गया था । मुख्य रूप से मनुष्य के जीवन में चार आश्रम माने गये थे । ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, सन्यास । जीवन की सफलता के लिए यह व्यवस्था आवश्यक मानी जाती थी । जीवन के हर स्तर पर इन आश्रमों का महत्व रहता था । प्रत्येक व्यक्ति का जीवन सुगठित होकर मोक्ष की ओर अग्रसर हो जाय, यही आश्रम धर्म का उद्देश्य था ।

---

1. जोरू जूठीण जगत् की, भले बुरे का बीच ।
   उत्यम ते अलगे रहै, निकटि रहै ते नीच ।।
   साखी भाग - कामीं नर कौ अंग - 14

आश्रम धर्म के संबन्ध में विशेष रूप से कबीर को कुछ कहते हुए हम नहीं पाते हैं । फिर भी उनके विचारों को पूर्ण रूप से परख लें तो आश्रम धर्म की ओर उनकी दृष्टि अनुकूल नहीं थी, ऐसा मालूम होता है । उनके मत में आश्रम जो भी हो मनुष्य को सत्कर्म करते हुए ईश्वर भक्ति में लीन रहना चाहिए । चार आश्रमों को पार करने मात्र से इस सांसारिक भवसागर को पार करना असंभव है । वे कहते हैं कि चाहे कितने ही आश्रमों का पालन कर ले किन्तु ईश्वर के बिना, प्रभु पर दृढ़ विश्वास के बिना कोई सहायक नहीं हो सकता ।

इस प्रकार कबीर दास ने सामाजिक उन्नति के लिए समाज में प्रचलित कुरीतियों, अन्धविश्वासों और अनाचारों का निर्भर्जन करने का महत्वपर्ण कार्य किया । जाति-पांति, छूआ छूत आदि का निवारण करके समस्त मानव को एकता के सूत्र में बांध कर एक सुन्दर समाज की कल्पना उन्होंने की । रूढियों और अन्धविश्वासों से मुक्त मनुष्य ही एक स्वतन्त्र समाज की स्थापना कर सकता है । श्रेष्ठ मानव और शोषण मुक्त समाज ही कबीर का लक्ष्य था । भारतीय समाज के सात्विक पक्ष को आधार बनाकर त्रुटियों का विरोध करते हुए समाज सुधार संबन्धी कार्य उन्होंने करना चाहा । दूसरे शब्दों में आध्यात्मिकता के मूल से जन्म लेने वाली भौतिकता ही कबीर दास के समाज सुधार की जीवनदायिनी शक्ति है ।

---

1. भगति हीन अस जीवना, जन्म मरन बहु काल ।
   आश्रम अनेक करसि रे जियरा, रांम बिना कोई न करै प्रतिपाल ।।
   रमैंणी भाग - सतपदी रमैंणी ।

श्री नारायण गुरु का समय और केरल का समाज

श्री नारायण गुरु कबीर के परवर्ती रहे हैं । दोनों के युग में काफी अंतर है । फिर भी गुरु युगीन केरल समाज की दशा कबीर के समय से किसी प्रकार भिन्न नहीं लगती । उस समय केरल के राज शासन द्वारा सैकडों जातियों और उपजातियों की सूची तैयार की गई थी । जाति-पांति, छूआछूत आदि से समाज की दशा अधिक शोचनीय बन गयी थी । समाज में अनाचारों, अन्धविश्वासों और बाह्याडम्बरों का बोल बाला था । सभी प्रकार से समाज अवनति के पथ पर था । जिस देश में गुरु ने जन्म लिया था उस केरल की स्थिति सब से अधिक शोचनीय थी । यहाँ अनेक जातियाँ रहती थीं । इन में हिन्दु, ईसाई, मुसलमान सभी लोग थे । हिन्दुओं के बीच ब्राह्मण और अब्राह्मणों का भेद था । ब्राह्मण और अब्राह्मणो के बीच में अस्पृश्यता की प्रणाली जारी थी । परंपरा एवं जन्म के अनुसार ही इन जातियों का निर्णय होता था ।[1] ब्राह्मणों के बीच में भी भाषाओं के अनुसार अनेक विभाग किए गए जैसे मलयाली ब्राह्मण, तुलु ब्राह्मण, तेलुंग ब्राह्मण, तमिल ब्राह्मण आदि ।[2] इस के अलावा नायर, वारियर, पिषारडी, मारार, आदि अब्राह्मण

---

1. The caste in Kerala has nothing or very little to do with what is popularly known as the four fold divisions of Brahmana, Kshatriya, Vaisya and Sudras. These castes have evolved and crystalized in relation to heriditory trades and work oppertunities -
   Namboothiripad E.M.S. Kerala - Yesterday Today and Tomorrow - pg. 33.
2. Ramanath Iyer - Progressive Travancore (Trivandrum 22) pg. 52-59

जातियाँ भी थीं जिनका समाज में विशेष आदर किया जाता था । यह आदर एवं अधिकार समाज के दूसरे हिन्दुओं के लिए निषिद्ध था ।[1] समाज के अधिकांश लोग निम्न जाति के थे । उन्हें अछूत माना जाता था । अछूतों में भी उच्च नीच के भेद विभेद रहते थे । निम्न जाति के लोगों की एक लंबी सूची मिलती है जिन में ईषवा, कुरवा, पुलया, परया, आदि आते हैं । ईषवा जाति इनमें से सब से ऊपर थी । और इनमें से ईषवा को छोडकर शेष जाति के लोग सबसे अधिक गरीब थे उन्हें भूमि पुत्र कहते थे ।[2] समाज के लिए इस प्रकार का यह विभाजन अभिशाप सा बन गया था ।[3] सब से निम्न जाति के लोगों को अछूत कहा जाता था और अछूत कहे जाने वाले लोगों के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाता था । "सवर्ण" और "अवर्ण" के बीच में बडा अन्तर था । "सवर्ण" कहे जाने वाले लोग "अवर्ण" को छूते तक नहीं थे । अवर्णों के लिए मंदिरों में प्रवेश निषिद्ध था । वे सार्वजनिक कुओं,

---

1. Padmanabha Menon K.P. - History of Kerala Vol. III pg.144-61.

2. Namboothiripad E.M.S. - Kerala - The Motherland of Malayalees (Calcutta 1948) pg. 170-71.

3. "Kerala and Tamilnadu had been free not only from the curse of untouchablity but even from caste differences....." Elamkulam Kunjan Pillai - Studies in Kerala History pg. 55.

तालाबों, जलाशयों से पानी भी न ले सकते थे । वे उत्सवों, कथा, वार्ताओं में सम्मिलित नहीं हो सकते थे ।[1] अवर्ण जाति को कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं था । मानवोचित सभी अधिकार उनके लिए निषिद्ध थे, यही नियम था ।[2]

स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय थी । अशिक्षा, बालविवाह, दहेज प्रथा आदि के कारण नारी जीवन नारकीय बन गया था । इस प्रकार स्त्रियों का जीवन क्लेश पूर्ण था ।[3] स्त्री-शिक्षा की व्यवस्था उस समय नहीं थी । समाज

---

1. " ..... They are dibarred from public utilities such as the use of tanks and roads and religious disabilities which dibare them from the use of temples, burnings ghaste etc.
   - L.A. Krishna Iyer
   Social History of Kerala - Vol. II pg. 50.

2. Legally these classes had no civil status, no civil rights and may be compared to the slaves of Roman Society - V.P.S. Raghavanshi -
   Indian Society in the Eighteenth Century pg. 74.

3. Child marriage, defication of husband, ban on widow remarriage, ban on woman's education all these are the offsprings of the Varnasrama - Elamkulam Kunjan Pillai
   Studies in Kerala History pg. 61.

में उसका कोई स्थान नहीं होता था ।[1]

विरोध का स्वर

वर्ण एवं जाति व्यवस्था :

श्री नारायण गुरु वर्ण एवं जाति व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे । वर्ण एवं जाति व्यवस्था के बारे में गुरु के अपने विचार थे । केवल जन्म के आधार पर व्यक्ति का महत्व होने से श्री नारायण गुरु ने इनकार किया । उन्होंने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का घोर विरोध किया । उनका अटल विश्वास था कि उच्च कुल में जन्म लेने मात्र से कोई महान या आदरणीय नहीं बनता । आचरण ही यह सिद्ध करने वाला है कि महान कौन है । "जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा जायते द्विजः" की उक्ति का समर्थन गुरु ने किया । वे कहते हैं कि निम्न जाति में जन्म लेने वाले अनेक लोग अपने आचरणों से महान बन गये हैं । उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि कर्म ही महानता का आधार है । अपनी कृतियों में अनेक उदाहरणों से उन्होंने अपने इस विचार को व्यक्त किया है । वे कहते हैं कि नीच कुल में जन्म लेने वाले पराशर महर्षि अपने कर्म से ही महान बन गये थे और उसी प्रकार मत्स्य कन्या के

---

1. Women as well as the low castes gradually lost their high status in society and right to education. Education of the masses was opposed to the principles of Chathurvarnya-
Elamkulam Kunjan Pillai
Studies in Kerala History pg. 65.

गर्भ से उत्पन्न वेदव्यास ने ब्रह्मसूत्र का निर्माण करके महानता प्राप्त की थी ।[1] पराशर महर्षि से बढकर कोई ब्राह्मण या सत्यदर्शी नहीं जन्मा है । अतः जन्म के आधार पर महिमा का निर्णय करना गलत है ।

ऊँच-नीच और छूआ छूत का निवारण:

श्री नारायण गुरु ने समाज में प्रचलित ऊंच-नीच की भावना और छूआछूत का खण्डन किया । उन्होंने उच्च स्वर में कहा कि जाति नामक कोई वस्तु नहीं है, सारे व्यक्तियों की सृष्टि ईश्वर ने समान रूप से की है । भेद नामक कोई चीज़ ही नहीं है । सारा विभाजन मनुष्यों के द्वारा बनाया हुआ है ।[2] यहाँ केवल एक ही जाति होती है, मनुष्य जाति । मनुष्य जाति में फिर जातियों का होना अस्वाभाविक है, निरर्थक है । अतः जातियों के नाम पर होने वाले उच्चनीचत्व और अस्पृश्यता का कोई अर्थ नहीं है । जातिनिर्णयम नामक कविता में गुरु ने जाति क्या है ? जाति और जन्म का संबन्ध क्या है ? इन सब का उत्तर दिया है । उन्होंने कहा है कि मनुष्य को मनुष्यत्व ही जाति है । जन्म से मिलनेवाली ब्राह्मण

---

1. परच्चयिल निन्नु पण्डु पराशर महामुनि
   पिरन्नु मरसूत्रिच्च मुनि कैवर्त कन्यकयिल -
   गुरुदेव कृतिकल - जाति निर्णयम् - 5
2. ओरु जातियिल निन्नल्लो पिरन्निटुन्नु सन्तति
   नरजातियितोर्कुम्पोलोरु जातियिलुल्लताम् -
   गुरुदेव कृतिकल - जाति निर्णयम् - 3

आदि जाति का कोई अर्थ नहीं है ।[1] ऊँचे स्वर में उन्होंने कहा है कि मनुष्य के लिए एक ही जाति है, धर्म एक है, ईश्वर एक है, उत्पत्तिस्थान एक है, आकार एक है, मनुष्य वर्ग में भेद कुछ भी नहीं है ।[2] ब्राह्मण और शूद्र एक ही वर्ग से जन्म लेते हैं तो मनुष्य वर्ग में क्या भेद होता है ? इस प्रकार श्री नारायण गुरु ने ब्राह्मण और शूद्र को एक ही जाति बताते हुए उन दोनों में भेदभाव की निरर्थकता का समर्थन किया ।

समाज में अस्पृश्यता का निवारण करते हुए निम्न जातियों के उद्धार का महत्वपूर्ण कार्य भी श्री नारायण गुरु ने शुरू किया । उनके समय केरल में पुलया, परया आदि निम्न जातियों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी । उन से पाशविक व्यवहार किये जाते थे । गुरु देव ने स्वयं उन से अटूट संबन्ध स्थापित किया और अनेक दुराचारों को बन्द करने का प्रयास किया । उनके बीच में सभ्यता का प्रचार करना उनका लक्ष्य था । हरिजनों की शिक्षा का प्रबन्ध भी उन्होंने किया ।[3]

---

1. मनुष्याणाम् मनुष्यत्वम्
   जातिगोत्वम् गवाम् यथा
   न ब्राह्मणादिरस्त्वैवम्
   हा ! तत्वम् वेति को पि न - गुरुदेव कृतिकल - जाति निर्णयम् - ।
2. ओरु जाति ओरु मतम् ओरु दैवम् मनुष्यनु
   ओरु योनियोराकारमोरु भेदमिल्लातिल् - गुरुदेव कृतिकल - जातिर्निणयम् - 2
3. के.के. पाणिक्कर - श्री नारायण परमहंसन - पृ. 256

मंदिरों में प्रवेश करके पूजा-उपासना करने का अधिकार उनके लिए निषिद्ध था । श्री नारायण गुरु ने स्वयं ऐसे मंदिरों की प्रतिष्ठा की जहाँ हर कोई सदा प्रवेश कर सकता है । मंदिरों में प्रवेश कर पूजा पाठ करने का अवसर श्री नारायण गुरु ने सब से पहले शूद्रों को प्रदान किया । गुरु का यह कदम क्रान्तिकारी था और इसका परिणाम भी असाधारण था ।

श्री नारायण गुरु के समय में केरल में सामाजिक समानता की बात करना ही अपराध था । लेकिन बडी ही निर्भयता के साथ गुरु ने इस काम की जिम्मेदारी संभाली । निर्भीक होकर उन्होंने समाज सुधारक का कार्य शुरू किया । वे अपने विचारों पर दृढ रहे और जीवन भर मानव समानता की स्थापना का व्रत धारण किया । श्री नारायण गुरु सैद्धांन्तिक पक्ष पर जितना बल देते थे उससे भी अधिक कर्म पक्ष पर देते रहे । कार्यान्वयन और सिद्धान्तों का व्यावहारिक प्रयोग गुरु का परम लक्ष्य रहा ।

मानव मानव की समानता एवं एकता :

श्री नारायण गुरु ने मानव मात्र की समानता एवं एकता पर बल दिया । उन्होंने विशेष कर हिन्दु और मुसलमानों के बारे में कुछ नहीं बताया बल्कि संपूर्ण मानव जाति के बारे में कहा है । उनका दृढ विश्वास था कि समाज की उन्नति के लिए प्रत्येक मानव की उन्नति अनिवार्य है । उनके अनुसार जाति व्यवस्था समाज की उन्नति में बाधा उपस्थित करनेवाली है । समाज में प्रचलित जटिल जाति व्यवस्था को दूर करके एक ही जाति - मानव जाति - की प्रतिष्ठा

करने का सफल प्रयत्न श्री नारायण गुरु ने किया । "ओरु जाति, ओरु मतम्, ओरु दैवम् मनुष्यनु "[1] यही उनका नारा था । जाति भेद के नाम पर मानव मानव में होने वाले भेद भाव का उन्होंने खण्डन किया । गुरु देव ने लोगों को उपदेश दिया कि जाति नहीं पूछना चाहिए और जाति से संबंधित कोई भी विचार मन में नहीं लाना चाहिए ।[2] जाति भेद के विरुद्ध प्रत्येक व्यक्ति को डट कर काम करना चाहिए । उन्होंने कहा कि बाहरी भिन्नता के रहते हुए भी मानव मानव के बीच में आन्तरिक भिन्नता नहीं है । वे कहते हैं कि आम की शाखायें और पत्ते अलग अलग दिखाई देते हैं । लेकिन उनका मूल एक ही है । उसी प्रकार भिन्न भिन्न मानवों का मूल भी एक ही भगवान है ।[3]

ईश्वर की प्रतिष्ठा :

श्री नारायण गुरु के समय में केरल के हिन्दु समाज में ईश्वर के साकार रूप की प्रतिष्ठा हो चुकी थी । सगुणोपासकों के समाज में निर्गुण की प्रतिष्ठा करना कठिन कार्य था । गुरु ने सूझबूझ से काम लिया । श्री नारायण गुरु ने निर्गुण वादी होते हुए भी सगुणोपासना का समर्थन किया, देश के नाना भागों में अनेक मंदिरों में देवी देवताओं की मूर्तियों की प्रतिष्ठा उन्होंने स्वयं की ।

---

1. ओरु जाति ओरु मतम् ओरु दैवम् मनुष्यनु -
   गुरु देव कृतिकल - जाति निर्णयम् - 2
2. जाति चोदिक्करुतु, परयरुतु, विचारिक्करुतु -
   पी. के. भानु (स्वामी धर्मानन्दजी) श्री नारायण परमहंसदेवन -पृ. 98
3. के. के. पणिक्कर - श्री नारायण परमहंसन - पृ. 311

क्योंकि उनका अटल विश्वास था कि साधारण लोगों के बीच में निर्गुणोपासना का प्रचार असंभव है, भक्ति की प्रथम अवस्था में सगुणोपासना ही जनसाधारण के लिए उपयुक्त होगी । इसी लिए गुरु ने सगुण का समर्थन किया । गुरु की इस दृष्टि में बहुसंख्यक लोगों की इच्छा और विश्वास की भावना परिलक्षित होती है । किसी भी धर्म का अवलम्बी क्यों न हो यदि मनुष्य भलाई कर सकता है तो वही श्रेष्ठ धर्म है । मानव कल्याण और मानव की मुक्ति ही उनका लक्ष्य था । गुरु के ये विचार विश्व मानव की संकल्पना से जुडते हैं ।

श्री नारायण गुरु के समय में केरल में भक्ति के नाम पर अनेक प्रकार के आचार होते थे । भक्ति के नाम पर किये जाने वाले अनुष्ठानों का एकदम विरोध उन्होंने नहीं किया । उदाहरण के लिए तीर्थाटन के बारे में उन्होंने तत्कालीन प्रचलित विश्वास के स्थान पर एक नयी मान्यता को प्रस्तुत किया ।

शिष्यों के इच्छानुसार शिवगिरि तीर्थाटन की अनुमति उन्होंने दी । इस अवसर पर उन्होंने तीर्थाटन का लक्ष्य व्यक्त किया और कहा कि तीर्थाटन मोक्ष या मुक्ति के लिए नहीं बल्कि लोगों की नाना प्रकार की उन्नति केलिए है । इस लक्ष्य को लेकर आज भी दिसम्बर के महीने में शिवगिरि तीर्थाटन आयोजित किया जाता है । भक्ति के नाम पर चलने वाले अन्य दुराचारों का भी विरोध गुरुदेव ने किया है । उदाहरण के लिए देवताओं की प्रीति केलिए जानवरों की बलि देने की रीति का उन्होंने खण्डन किया । उपासना के आदर्श स्वरूप को उन्होंने जन समक्ष प्रस्तुत किया । त्योहार आदि का विरोध तो उन्होंने नहीं किया । लेकिन इस के नाम पर किये जाने वाले बडे खर्च में नियंत्रण रखने की

आवश्यकता की ओर बल दिया । "महाशिवरात्री" के दिन उन्होंने अरुविप्पुरम् में शिवलिंग की प्रतिष्ठा की थी । गुरु ने स्वयं प्रतिष्ठा का कार्य संपन्न किया था । प्रचलित धार्मिक परंपरा का विरोध गुरु के द्वारा यहाँ से प्रारंभ होने लगा । प्रतिष्ठा कर्म के लिए किसी भी ब्राह्मण की सहायता नहीं ली गयी थी । यह वास्तव में बडा निटकारी कार्य था । इसके साथ मंदिरों की प्रतिष्ठा का सिलसिला जारी हुआ । ये मन्दिर समाज के अछूते वर्ग के लिए नवोत्थान का काम करा गये । इस प्रकार श्री नारायण गुरु ने व्रत, तीर्थ, अनुष्ठान, त्योहार आदि के संशुद्ध रूप को जनता के सामने प्रस्तुत किया ।

सामाजिक नीति का स्वरूप :

श्री नारायण गुरु ने सामाजिक नीति के स्वरूप को उभार कर रखा था । धर्म और नीति पर अधिष्ठित एक समाज की स्थापना उनका लक्ष्य रहा । अहिंसा, सत्य, दया, परोपकार आदि पर उन्होंने विशेष बल दिया है । उन्होंने एक आचरण संहिता को जन्म दिया । अहिंसा का पालन, सत्य बोलना, वासना से मुक्ति, मद्यवर्ज्जन आदि इन आचरणों में प्रमुख है । गुरुदेव ने अहिंसा को सब से श्रेष्ठ धर्म कहा है ।[1] मनसा वाचा कर्मणा किसी भी जीव को दुख न देना अहिंसा है । अहिंसा के महत्व का प्रतिपादन करते हुए गुरुदेव ने

---

1. अहिंसा परमो धर्मसर्वधर्मेषु सुव्रता:
   बुद्धादयो महात्मानो थयापु: परमम् पदम् -
   श्री नारायण गुरुदेवन - श्री नारायण धर्मम् - पृ. 48

बताया है कि अहिंसा धर्म के पालन करने वालों के प्रति सभी लोग माता जैसा स्नेह और विश्वास प्रकट करते हैं ।[1] श्री नारायण गुरु ने "जीवकारुण्य पंचकम्" नामक कविता में अहिंसा की महिमा का सुन्दर वर्णन किया है । वे बताते हैं कि समस्त जीव ईश्वर की सन्तान है अतः सब भाई है । सभी धर्म का सारांश अहिंसा है ।

समाज के कल्याण के लिए सत्य के आचरण को श्री नारायण गुरु ने सब से अधिक महत्वपूर्ण माना है । उन्होंने कहा है कि सत्य सनातन ब्रह्म है । यह दुनिया सत्य पर आधारित है । अतः सत्य ही बोलना चाहिए, झूठ कभी नहीं बोलना चाहिए ।[2] गुरु ने कहा है कि सब कहीं सत्य दर्शन करना ही यथार्थ सत्य है । सत्य और धर्म के पालन से आत्म साक्षात्कार ही मानव जीवन का लक्ष्य है ।[3]

---

1. अहिंसाव्रतशीले तु हिंसाहिंसाहि जन्तवः
   विश्वासमुपगच्छन्ति मातरीव प्रमोदतः
   श्री नारायण धर्मम् - पृ. 42
2. सति साधु भवेत्सत्यम् सत्यम् ब्रह्म सनातनम्
   सत्येतिष्ठति लोकोयम् वादेत्सत्यम् न चानृतम् ।
   श्रीनारायण धर्मम् - पृ. 43
3. ओन्नण्डु नेरु नेरल्लि-
   तोन्नुम मर्त्यर्कु सत्यउम्
   धर्मउम् वेणमायुसुम्
   निलकुकिल्लार्कुमोर्कुका - गुरुदेव कृतिकल - दतापहारम - ।

दूसरों के धन पर आकर्षण नहीं होना चाहिए । गुरूदेव कहते हैं कि दूसरों के धन के बारे में चिन्ता नहीं करनी चाहिए ।[1] मनुष्य को कभी चोरी नहीं करनी चाहिए । चोरी सभी विपदाओं का कारण है । चोरी न करना सर्वैश्वर्य का हेतु है । अतः उन्होंने उपदेश दिया है कि सदा अस्तेय का पालन करना चाहिए ।[2] वासना जनित व्यभिचार अत्यधिक हीन कृत्य है । गुरु कहते हैं कि व्यभिचार से व्यक्ति का स्थान, मान, धन, ज्ञान, आचार, कुल, प्राण आदि का अकाल नाश हो जाता है ।[3] गुरूदेव के अनुसार मद्यपान अधर्म है । मद्य तो बुद्धिभ्रम को उत्पन्न करने वाली वस्तु है, विष समान है । इसलिए मद्यपान नहीं करना चाहिए ।[4] इन

---

1. परस्वाहृति तत् चिन्तावर्ज्जतास्तेय संज्ञिता
   तदस्तेयप्रतिष्ठायाम् रत्नोपस्थानमुच्यते -
   श्री नारायण धर्मम् - पृ. 44
2. स्तेयसर्वापदाम् हेतुरस्तेयसर्वसंपदाम्
   स्तेयान्मान क्षतिस्तस्मादस्तेयम् सर्वदाचरेत्
   श्री नारायण धर्मम् - पृ. 44
3. स्थान मान धन ज्ञानाचाराणाम् स्वकुलस्य च
   प्राणस्याकालिको नाशो व्यभिचारेण जायते ।।
   श्री नारायण धर्मम् - पृ. 47
4. सुरारिफ्नविजयाधूमपत्रादि वत्सलाः
   चित्तभ्रम विधायित्वान्मद्यत्वेनेह गण्यते ।।
   श्री नारायण धर्मम् - पृ. 49

पाँचों आचरणों के पालन से व्यक्ति, भौतिक जीवन से सुख प्राप्त कर सकता है और उसका परलोक भी सुधार सकता है । यहाँ "धर्म" का अर्थ मज़हब से नहीं वरन् श्रेष्ठ कर्म से है और यह श्रेष्ठ कर्म कर्तव्य है और श्रेष्ठ आचरण है । धर्म के बारे में गुरु देव ने बताया है कि धर्म ही परब्रह्म है, धर्म ही सब से श्रेष्ठ धन है , धर्म की सदा विजय होती है, यह धर्म मनुष्य को मोक्ष प्रदान करता है ।[1]

सामाजिक नीति पर विचार करते हुए उसके अनेक पक्षों को उन्होंने उभारा है । दान पर गुरु ने बल दिया है । किसी को दी गयी चीज़ फिर वापस लेना ठीक नहीं । इस दुनिया में उस से अधिक घृणित कार्य नहीं है । दत्तापहार स्वयं को नहीं सन्तान परंपरा को भी दुख कारण बन जाता है ।[2] अपने सहजीवों के प्रति दया दिखाना और उनका उपकार करना मानव धर्म है । "जीवकारुण्य पंचकम्" नामक कृति में गुरु देव ने इसका सजीव वर्णन किया है । उनके विचार में दूसरों को कभी भी पीडा नहीं पहुँचानी चाहिए । सभी जीवों के प्रति

---

1. धर्म एव परम् दैवम्
   धर्म एव महाधनम्
   धर्म सर्वत्र विजयी
   भवतु श्रेयसे नृणाम् - गुरुदेव कृतिकल - धर्मम्
2. दतापहारम् वंशयर्कु
   मत्तलेकीटुमेन्नतु
   व्यर्थमल्ल पुरागीरि -
   नेत्रयुम् सत्यमोर्कुका - गुरुदेव कृतिकल - दतापहारम् - 2

दया और करुणा दिखाना मानवीय धर्म है । सभी जीवजालों के प्रति करुणा दिखानी चाहिए । स्वयं श्री नारायण गुरु ने अनुकम्पा का साकार मूर्त बनकर ही "अनुकम्पा दशकम" नामक कृति की रचना की है । इस दुनिया के सब से छोटे जीव के प्रति भी करुणा का भाव दिखाने की आवश्यकता की ओर गुरुदेव ने इशारा किया है । सब से छोटे जीव को भी किसी भी प्रकार की पीडा नहीं पहूँचानी चाहिए ।[1] मनुष्य के लिए ज्ञान, स्नेह और कारुण्य की आवश्यकता की ओर गुरु देव ने ज़ोर दिया है । सांसारिक क्लेशों से पार करने के लिए मनुष्य को ये तीनों बातें अनिवार्य है ।[2] इस प्रकार गुरुदेव ने सामाजिक उन्नति के लिए श्रेष्ठ कर्म और नीति का पालन अनिवार्य माना है ।

सामाजिक संस्कार :

श्री नारायण गुरु ने धर्म के नाम पर होनेवाले अनाचारों और अन्धविश्वासों का विरोध तो किया, लेकिन कुछ मुख्य संस्कारों को अनिवार्य समझकर

---

1. ओरु पीडायेरुम्पिनुम् वरु-
   -तरुतेन्नुल्लनुकम्पयुम् सदा
   करुणाकरा नलकुकेन्नुल्लिल निन्-
   तिरुमेय् विट्टकलाते चिन्तयुम् - गुरुदेव कृतिकल - अनुकम्पादशकम् - ।
2. अरुलन्पनुकम्पा मुन्निनुम्
   पोरुलोन्नाणितु जीवतारकम्
   अल्लुल्लवनाणु जीवि ये -
   न्नुरुविट्टीटुकायी नवाक्षरी - गुरु देव कृतिकल - अनुकम्पादशकम् - 3

उनका समर्थन भी किया है । गर्भधान, नामकरण, विद्यारंभ, विवाह, अन्त्येष्टि आदि संस्कारों के प्रति श्री नारायण गुरु ने अनुकूल विचार प्रकट किया है । उदाहरण के लिए नामकरण के बारे में गुरुदेव कहते हैं कि अच्छे दिन में, अच्छे नक्षत्र में, पुकारने में आसान और कम अक्षरों वाले और अर्थ संपुष्ट नाम स्वीकार करना चाहिए ।[1] विद्यारंभ के बारे में वे कहते हैं कि पाँच वर्ष की आयु में विद्यारंभ होना चाहिए, गुरु आत्मज्ञानी भी होना चाहिए ।[2] विवाह के बारे में गुरु देव ने विशद वर्णन दिया है । विवाह के लिए माता पिता और गुरु की अनुमति गुरुदेव अनिवार्य मानते हैं । कन्या उत्तम लक्षणों से युक्त उत्तम कुल जात भी होनी चाहिए ।[3] वे बताते हैं कि विवाह के समय वधू-वर के माता और पिता, दो साथी, दो बन्धू, गुरु और पुजारि के अनिवार्य सान्निध्य होना चाहिए ।[4] श्री नारायण गुरु ने "श्री नारायणधर्मम् " में इन सब का विशद वर्णन किया है । श्री नारायण गुरु के

---

1. सुवचम् सुश्रवम् नामधेयमल्पाक्षरार्थवत्
   अक्लिष्टम पुण्यनक्षत्रे विदधीत शुभेहनि - श्री नारायण धर्मम् - पृ. 65
2. एवं प्रवर्धमानस्य विद्यारंभम् शुभोन्तरम्
   पूर्वम्तु पंचमादब्धात् कारयेदात्मवेदिभिः
   श्री नारायण धर्मम् - पृ. 69
3. उत्तमाभिजनाम् धर्मयाम् सुशीलाम् लक्षणान्विताम्
   प्रसन्नाम वरयेत् कन्याम गुरु मातृपितृप्रियाम - श्री नारायण धर्मम् - पृ. 101
4. वरस्य पितरौ वधवाः पितरौ सहपाठिनौ
   वधूवरज्ञातियुग्ममाचार्यश्य पुरोहितः
   श्री नारायण धर्मम् - पृ. 104

समय में धर्म के नाम पर और भी अनेक आचार प्रचलित थे जिन को अनाचार, आडम्बर या अन्धविश्वास समझकर उन्होंने विरोध किया । समाज से इन आचारों को निर्माजन करने के लिए गुरु ने कठिन प्रयत्न किया । उन्होंने दृढ़ स्वर में कहा कि "बालविवाह", "तालिकेट्टु" आदि आचार अशास्त्रीय और अनावश्यक है इसलिए इस का अंत ज़रूर करना चाहिए ।[1] श्री नारायण गुरु के प्रयत्न के फलस्वरूप इस प्रकार के अनेक आचार केरल से सदा के लिए अप्रत्यक्ष हो गये ।

दहेज प्रथा को समाज से दूर करने का कठिन प्रयत्न भी गुरुदेव ने किया है । इसके बारे में वे बताते हैं कि धन देना और लेना सन्तानों के लेनदेन के समान है ।[2]

पारिवारिक जीवन की मान्यतायें :

श्री नारायण गुरु ने परिवार को समाज की सब से छोटी इकाई मानकर सामाजिक उन्नति के लिए परिवार के उज्ज्वल स्वरूप की ओर ध्यान आकर्षित किया । उन्होंने स्त्री को परिवार के ऐश्वर्य एवं उन्नति का केन्द्र बताया है । यहाँ गुरु ने स्त्री की सामाजिक स्थिति की ओर दृष्टि केंद्रित की । नारी की सामाजिक स्थिति को उच्च या श्रेष्ठ बनाने के लिए स्त्री शिक्षा पर उन्होंने अधिक ज़ोर दिया । गुरु देव ने उच्च स्वर में कहा कि समाज में केवल

---

1. मूर्कोत्तु कुमारन - श्री नारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम् - पृ. 259
2. दाना दाने पतिकस्य प्रकाशम् साधुगर्हिते
   ददाति यदि चादते तत् स्यात् सन्तति विक्रयः - श्री नारायण धर्मम् - पृ. 105

पुरुषों की नहीं बल्कि स्त्रियों की भी शिक्षा होनी चाहिए ।[1] श्री नारायण गुरु ने स्त्री के पतिव्रता रूप का आदर सदा किया है । पतिव्रता नारी को ही उन्होंने गृहलक्ष्मी कहा है । स्त्री के कामिनी रूप की भर्त्सना उन्होंने सदा की है । स्त्रियों को उन्होंने भक्ति की अधिकारिणी भी मानी है । स्त्री के माता रूप की वन्दना भी उन्होंने की है ।

पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के बीच अटूट संबन्ध को होना गुरुदेव ने अनिवार्य माना । उनके सभी कार्यों में परस्पर सहयोग की आवश्यकता है और इन में सब से ऊपर परस्पर स्नेह की अनिवार्यता है । परस्पर गलति की आरोप करना उचित नहीं । वे कहते हैं कि समझौते के साथ गलतियों को ठीक करना चाहिए ।[2] उत्तम कुटुम्बिनी के गुणों की ओर गुरुदेव ने इशारा किया है । वे कहते हैं कि अच्छे कुटुम्ब में जन्म लेने वाली, पति की इच्छा के अनुसार काम करने वाली और आमदनी के अनुसार खर्च करने वाली श्रेष्ठ नारी उत्तम कुटुम्बिनी है ।[3] गृहिणी के सत्यगुण संपन्न होना चाहिए नहीं तो परिवार

---

1. श्री मुर्कोत्तु कुमारन - श्री नारायण गुरुस्वामियुटे जीवचरित्रम् - पृ. 232
2. दम्पत्योसम भागित्वम् सुखे दुखे च संगते
   सहकारित्वमनघम् कृत्यनिर्वहणेमिथ : - श्री नारायण धर्मम् - पृ. 133
3. कनितुः कुलसंस्था या अनुरोधी गुणालया
   आयानुकूलव्यवत्यमला गृहिणीमाता ।
   श्री नारायण धर्मम् - पृ. 134

का नाश हो जाता है । वे कहते हैं कि पत्नी को पति और ईश्वर में श्रद्धा रखनी चाहिए ।[1] पतिव्रता बनी रहना पत्नी के लिए आवश्यक है । गुरुदेव के अनुसार एक पुरुष की सब से श्रेष्ठ सम्पत्ति पतिव्रता पत्नी है । गुरुदेव कहते हैं कि शीलगुणादि से संपन्न पतिव्रता स्त्री श्रेष्ठ है ।[2] इस प्रकार उत्तम परिवार के आधारभूत तत्वों का उद्घाटन गुरुदेव ने किया है ।

जीवन के चार चरण:

ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, सन्यास इन चार आश्रमों में ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, सन्यास इन तीन आश्रमों को ही गुरुदेव ने प्रधानता दी है ।

ब्रह्मचर्य :

चार आश्रमों में ब्रह्मचर्य को गुरुदेव सब से प्रधान मानते हैं । वे बताते हैं कि पुरुषों को विद्यारंभ से चब्बीस वर्ष और स्त्रियों को सोलह वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रम का समय है । वे गर्भधारण के समय से ही ब्रह्मचर्यव्रत अनिवार्य

---

1. आत्मानम् पालितवती शुश्रूषन्ती स्वनायकम्
   यशोभंगमकुर्वन्ती वर्तमानोत्तमा सती । - श्री नारायण धर्मम् - पृ. 136
2. वात्यायोमचलो दीपो लक्ष्मीस्सर्वार्थरूपिणी
   चारुसौशील्यनिलया महती गृहनायिका -
   श्री नारायण धर्मम् - पृ. 137

मानते हैं । याने गर्भकाल में माता को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ।[1] विद्यारंभ से याने पाँच वर्ष के बाद श्रेष्ठ गुरु के साथ बालक को रहना चाहिए । गुरु की सभी आज्ञा का पालन करना बालक का कर्तव्य है । ब्रह्मचारी की जीवन चर्या का भी विशद वर्णन गुरुदेव ने दिया है ।[2]

गार्हस्थ्य :

ब्रह्मचर्य के बाद माता-पिता और गुरु की आज्ञा के अनुसार उत्तम स्त्री को विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना है । धर्म का अनुष्ठान करते हुए पत्नी के साथ सत्पुत्र और धर्म के लिए गृहस्थाश्रमी को काम करना चाहिए ।[3] श्री नारायण गुरु ने अपने "श्रीनारायण धर्मम्" में गृहस्थाश्रमी की जीवन विधि का विशद वर्णन किया है ।[4]

सन्यास :

शैशव से ब्रह्मचर्य व्रत का अनुष्ठान करके गृहस्थाश्रम का यथाविधि

---

1. गर्भे विरूढमात्रस्य ब्रह्मचर्यम् भवेच्छिशो:
   तदर्थम् ब्रह्मचर्येण वर्तेतजननी तदा । - श्री नारायण धर्मम् - पृ. 83
2. श्री नारायण धर्मम् - पृ. 94, 95, 96
3. तया दयितया धर्ममाचरे नियतेन्द्रिय:
   धर्माय जीवनम् नूनम् प्रजायै च गृहव्रतम - श्री नारायण धर्मम् - पृ. 101
4. श्री नारायण धर्मम् - पृ. 102, 103, 104, 105.

अनुसरण करके शान्त होने वाला व्यक्ति अन्त में सन्यास ग्रहण करता है ।[1] गुरूदेव स्त्रियों को भी सन्यास की अधिकारिणी बनाते हैं । सन्यास के लिए वैराग्य और विवेक बुद्धि को वे अनिवार्य मानते हैं । अपने परिवार और बन्धुजनों से विशेष प्रकार का स्नेह एक सन्यासी को नहीं होना चाहिए । गुरु के पास जाकर गुरु की आज्ञा के अनुसार सिर का मुण्डन करके होमादि से शुद्ध होकर गुरु का नमस्कार करके उनसे कमण्डलु और "काषायवस्त्र" को ग्रहण करना चाहिए ।[2] इसके बाद गुरु के उपदेश के अनुसार जप, उपासना, शुद्धिकर्म, प्राणायाम आदि का अनुष्ठान सन्यासी को रोज़ करना चाहिए ।[3]

---

1. शैशवात् ब्रह्मचर्यञ्चतस्मात् गार्हस्थ्यमेत्यच
   दताश्रमीयधर्मैर्यः शान्तोन्ते सन्यासेत पुमान
   श्री नारायण धर्मम् - पृ. 146
2. आचार्यानुज्ञया पूर्वम् पुमान् मुण्डितमस्तकः
   विरजा होमो परमो समेत्य गुरूसन्निधिं
   प्रदक्षिणीकृत्य गुरुं साष्टांगप्रणतोथितः
   काषायवसनम् तस्मादाददीत कमण्डलुम्
   श्री नारायण धर्मम् - पृ. 150
3. जप ध्यानोपासानानिशोचंच प्राण संयमम्
   गुरूवदिष्टमार्गेण चरेनित्यम् यतेन्द्रियः
   श्री नारायण धर्मम् - पृ. 151

जीवन के जिन चरणों का प्रतिपादन गुरु ने किया है वह हिन्दु धर्म और परंपरागत संस्कार के अन्तर्गत आते हैं । व्यक्ति के आचरण को कर्म के महत्व से जोडकर गुरु ने जीवन की बाहरी धारा को आन्तरिक चेतना प्रदान की है । परंपरा एवं विश्वास को सामाजिक न्याय के साथ जोडकर वर्णहीन, वर्गहीन समाज की सृष्टि करना गुरु का लक्ष्य रहा है । इस सृष्टि से गुरु को केरल के सांस्कृतिक एवं सामाजिक नवोत्थान के मसीहा कहा जा सकता है ।

कबीर और श्रीनारायण गुरु के विचारों की तुलना :

कबीर और श्री नारायण गुरु दोनों ने वर्ण एवं जाति व्यवस्था की परंपरागत धारणा को गलत समझकर सच्ची भावना को समाज के सामने प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया । "जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा जायते द्विजः" का समर्थन दोनों ने किया । मानव सब समान हैं, सब एक ही भगवान से बनाये हुए हैं, कोई ऊँचा नहीं है, सबको उन्नति करने का समान अधिकार है ये कबीर और श्री नारायण गुरु के क्रान्तिकारी विचार थे । युग युगान्तर से शोषित, पीडित, दलित तथा त्रस्त शूद्र समाज के उद्धार का महत्वपूर्ण कार्य कबीर और श्री नारायण गुरु ने किया ।

भक्ति के नाम पर किये गये व्रत, अनुष्ठान, तीर्थ, त्योहार आदि के बारे में कबीर और श्री नारायण गुरु के विचारों में थोडा सा अंतर है । कबीरदास ने इन व्रत, अनुष्ठान तथा त्योहारों का एकदम विरोध किया तो

श्री नारायण गुरु ने इनका एकदम विरोध तो नहीं किया बल्कि इन सब के संशुद्ध स्वरूप को लोगों के सामने प्रस्तुत किया । याने व्रत, अनुष्ठान आदि के लक्ष्य की ओर क्रान्तिकारी परिवर्तन करने का सफल प्रयत्न उन्होंने किया । यहाँ भी बाह्याडम्बर का विरोध गुरु ने भी किया । दोनों ने धर्म के नाम पर प्रचलित बाह्याडम्बरों को दूर करके धर्म के वास्तविक स्वरूप को समाज के सामने रखने का सफल प्रयत्न किया ।

ईश्वर की प्रतिष्ठा याने सगुण निर्गुण के बारे में कबीर और श्री नारायण गुरु के विचारों में थोडा सा अंतर है । कबीर अत्यन्तिक निर्गुणोपासक ही रहे और किसी भी हालत में सगुण का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं थे । यहाँ श्री नारायण गुरु अधिक व्यावहारिक दिखाई पडते हैं । उन्होंने समन्वय का रास्ता अपनाया । व्यक्ति को भक्ति की ज़रूरत है, चाहे सगुण हो या निर्गुण, गुरु के लिए कोई अंतर नहीं । सब का लक्ष्य मानव कल्याण मात्र था । यहाँ कबीर का मार्ग अनुशासन का मार्ग है जो अधिक कठिन है जबकि श्री नारायण गुरु का मार्ग अधिक व्यावहारिक और सरल है । कबीर शुद्ध ज्ञान और योग के प्रकाश में बाह्य जगत् के पाखण्डों का उच्चाडन करना चाहते थे । जबकि गुरु सामाजिक संदर्भों से अनाचारों को जोडकर उसका विरोध करते रहे ।

धर्म और नीति के बारे में कबीर और श्री नारायण गुरु के विचारों में बहुत समानता हैं । दोनों ने समाज की उन्नति के लिए धर्म और नीति का पालन करना अनिवार्य माना है । अहिंसा, सत्य आदि मुख्य धर्म पर दोनों ने विशेष बल दिया है ।

धार्मिक संस्कारों के बारे में कबीर और श्री नारायण गुरु के विचारों में कुछ अंतर हम देख सकते हैं । कबीर दास ने सभी संस्कारों को आडम्बर समझकर उनका एकदम विरोध किया । यहाँ श्री नारायण गुरु ने संस्कारों से संबन्धित बाह्याडम्बरों का मात्र विरोध किया । लेकिन कुछ संस्कारों को मानव जीवन में अनिवार्य समझकर उनका पोषण भी किया । गुरुदेव ने धर्माचरण और धार्मिक संस्कारों का एक संशुद्ध एवं संस्कृत रूप प्रस्तुत किया । यहाँ कबीर और श्री नारायण गुरु में कुछ अंतर ज़रूर है । इस अंतर का कारण यह भी है कि गुरु मूलत: समाज सुधारक थे । जबकि कबीर ज्ञानमार्ग के अन्वेषण में निकले हुए संत थे । कबीर का क्रांतिकारी ज्ञान की अग्नि में सब का संस्कार करना चाहता था ; जबकि गुरु का समाज स्नेही समाज के उस थोडे हिस्से को जो कलंक से पूरित था, मिटा देना चाहता था । पुनरूत्थान गुरु का लक्ष्य रहा, जबकि कबीर का लक्ष्य नये समाज की सृष्टि करना था ।

कबीर और श्री नारायण गुरु दोनों ने समाज में परिवार का महत्वपूर्ण स्थान दिया । दोनों का अटल विश्वास है कि परिवार की उन्नति से ही समाज की उन्नति संभव है । अत: एक आदर्श पारिवारिक जीवन का नमूना दोनों ने प्रस्तुत किया । पति-पत्नी के संबन्ध को ही पारिवारिक जीवन में दोनों ने प्रधानता दी है । पति-पत्नी के बीच में निष्कलंक स्नेह, पातिव्रत्य आदि गुणों पर ही कबीर और श्रीनारायण गुरु दोनों का विशेष ध्यान हुआ है । इस प्रकार दोनों ने एक उत्तम परिवार की कल्पना समान रूप से की है ।

नारी के पत्नी रूप और माता रूप की प्रशंसा दोनों ने की है । नारी के कामिनी रूप की निन्दा भी दोनों में मिलती है । श्रीनारायण गुरु ने स्त्री-शिक्षा पर बल देकर स्त्री की सामाजिक स्थिति को श्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न किया तो कबीर दास इस बात की ओर मौन ही रहे । कालानुगत मान्यताओं से कबीर प्रभावित लगते हैं । श्रीनारायण गुरु ने समय की आवश्यकताओं के अनुसार स्त्री शिक्षा को महत्व प्रदान किया ।

आश्रम धर्म के बारे में कबीर और श्रीनारायण गुरु के विचारों में समानता नहीं है । कबीरदास के विचार में आश्रम धर्म के पालन करने से कोई फायदा नहीं है । लेकिन श्रीनारायण गुरु ने प्रत्येक आश्रम के बारे में विशद विवरण प्रस्तुत करके जीवन में आश्रम धर्म के महत्व को व्यक्त किया है ।

निष्कर्ष :

कबीर और श्रीनारायण गुरु दोनों ने बिगड़े हुए सामाजिक और धार्मिक वातावरण में जन्म लेकर समाज और धर्म की पुनःप्रतिष्ठा का महान कार्य किया । भिन्न भिन्न काल और परिस्थितियों में जन्म लेने पर भी मनुष्य और समाज को एक ही धागे में गूँथने की आवश्यकता दोनों ने महसूस की । मनुष्य और समाज के बीच के अन्तर को दोनों सहन नहीं कर पाते थे और उसे मिटाने का दोनों ने प्रयास भी किया था । समस्त मानव को एकता के स्वर्ण सूत्र में बाँध कर एक मानव समाज की स्थापना दोनों का लक्ष्य था । यहाँ उच्चनीच, जाति पांति, छूआ-छूत आदि के लिए कोई स्थान नहीं । समाज की उन्नति को मानव की

उन्नति मानकर मानव मात्र का कल्याण और भलाई के लिए दोनों ने परिश्रम किया । यहाँ मानव कल्याण और मंगल में बाधा डालनेवाली सभी बातों का विरोध कबीर और श्रीनारायण गुरु ने किया था । समाज में मानव मानव के बीच के संबन्ध को सुदृढ बनाने के लिए दोनों ने सच्चे मानवीय व्यवहार की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और सत्य, अहिंसा, दया, करुणा आदि मानवीय गुणों का दिव्य सन्देश बार बार सुनाया । इस प्रकार सच्चे समाज सुधारक के रूप में कबीर और श्रीनारायण गुरु ने अपना महान कार्य किया ।

धर्म और समाज के बीच के अटूट संबन्ध को समझकर धर्म की पुनप्रतिष्ठा का महान कार्य भी कबीर और श्रीनारायण गुरु ने अनिवार्य समझा । इस दिशा में धर्माचरण पर दोनों की दृष्टि पडी । बुरे और अशास्त्रीय धार्मिक आचरण के कारण धर्म के अध:पतन को वे दोनों सहन नहीं कर पाते । अत: इस प्रकार के धार्मिक आचरणों को समाज से दूर करने का प्रयत्न दोनों ने किया ।

इस महान साधना में मानवकल्याण को सब से ऊपर प्रतिष्ठित करना दोनों का लक्ष्य रहा है । क्रान्तिकारी होने के कारण हिन्दु-मुस्लिम धार्मिक समन्वय की भावना पर ज़ोर देते हुए कबीर ने उस धर्म का समर्थन किया जो ज्ञान और स्नेह से जुडता है । सामाजिक शोषण से मुक्त मानव की कामना कबीर ने की । वैसे हिन्दुमुस्लीम धर्म का समन्वय करना श्रीनारायण गुरु का लक्ष्य नहीं था । हिन्दु धर्म में आयी हुई च्युति से जनसमाज की रक्षा करना और सही धर्म प्रचार के माध्यम से मानव कल्याण करना उसका लक्ष्य था । इस कारण

हिन्दु धर्म के सिद्धान्तों पर बल देते हुए निम्न जाति के लोगों के उद्धार को गुरु ने लक्षित किया । युग-युग से पीडित और शोषित जनता का उद्धार गुरु ने किया था । इस बिन्दु पर कबीर और गुरु दोनों सहभागी लगते हैं । आत्यन्तिक रूप में दोनों का सन्देश जन कल्याण का है । इस प्रयास में सब से अधिक कष्ट भोगने वाले निम्न कोटि के लोगों को ऊपर उठाना अनिवार्य था । इस अनिवार्य कर्म को धर्म, नीति और मानवीयता से जोडकर कबीर और गुरु ने समान रूप से विश्व के सामने प्रस्तुत किया । नवोत्थान की कामना करने वाले श्रीनारायण गुरु ने धर्म की बाहरी सीमाओं को कभी नहीं स्वीकारा और इस दृष्टि से कहा कि भलाई से रास्ता जोडो, धर्म से नहीं । मनुष्य किसी भी धर्म में विश्वास करे यदि वह भलाई करता है तो कोई फर्क नहीं पडता । प्रश्न आचरण का है, धर्म का नहीं ।

पाँचवाँ अध्याय ‡ उपसंहार ‡

संत कबीर और श्रीनारायण गुरू के

विचारों की विशिष्टता – वर्तमान संदर्भ में

पाँचवाँ अध्याय

§ उपसंहार §

संत कबीर और श्री नारायण गुरु के विचारों की विशिष्टता - वर्तमान संदर्भ में

शोध और अध्ययन की विशिष्टता को बनाये रखने वाले तत्वों में उनकी प्रासंगिकता और समाज सापेक्षिकता अत्यन्त प्रमुख आयाम है । वस्तुतः अध्ययन और विश्लेषण के आधार जब तक समाज सापेक्षिकता के साथ नहीं जुडते तब सैन्द्धान्तिक रूप में ही शोध का कार्य स्वीकार्य हो सकता । कबीर और श्रीनारायण गुरु के रचनात्मक दृष्टिकोण, विचार, दर्शन और सामाजिक परकता के आधार पर यह सिद्ध करते हैं कि उनमें निहित आत्मकता, कालजयी मानवीय दृष्टि के गहराई में प्रवर्तमान ऐसे सन्दर्भ इन महात्माओं की चिन्तन पद्धतियों में विद्यमान हैं । समाज, धर्म, दर्शन और मानवीय बन्धुत्व की सुनहली किरणों को विकीर्ण करनेवाली ज्योर्तिमयता और उससे प्रभावित होने वाली रचना धर्मिता पाठक को हमेशा विस्मय चकित करने में सक्षमिक रहती है ।

अध्ययन के आधार पर रूपायित होने वाले निष्कर्ष यह सूचित करते हैं कि महात्मा कबीर और श्री नारायण गुरु ने समाज, धर्म, दर्शन और विश्व-बन्धुत्व की विशिष्ट भूमिकाओं को सामने रखते हुए विचारों का चयन किया था । यद्यपि ये वैचारिक चयन विद्युत्ता की खोज में या पाण्डित्य के प्रदर्शनी नहीं किया गया, फिर भी उसमें अन्तर्निहित वैचारिक दृष्टि बाहरी प्रदर्शन के ऊपर उठकर सर्व मंगल की कामना से परिचालित होती दिखाई पडती है । क्योंकि दो महान आचार्यों का लक्ष्य समाज के पीडित और प्रताडित जन संजय का उद्धार की रूपरेखा को जिस तल्लीनता के साथ इन आचार्यों ने प्रस्तुत करना चाहा वह उनकी मानवी प्रतिबद्धता का सूक्ष्म स्वरूप प्रस्तुत करती है । सामाजिक कुरीतियों का अंत,

सामाजिक न्याय और नीति का समर्थक विश्व जनिक एकता पर विख्यात, दर्शन की ज्योति से अन्धकार का नाश, धर्म की सही व्याख्या के माध्यम से पारलौकिक आनंद की प्राप्ति संघर्षों के अंत के माध्यम से विश्व शान्ति की कामना ये सब कुछ ऐसी गहरी और सूक्ष्म अवधारणा हैं जो कबीर और श्री नारायण गुरु के विचारों की गहराई में विद्यमान है ।

सामाजिक आयाम :

दोनों महात्माओं की रचनाओं के विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी प्रथम और प्राथमिक प्रतिबद्धता समाज के प्रति रही है । उत्तर भारत की जन जीवन की अस्तव्यस्तता को समाप्त करना कबीर का लक्ष्य था तो गुरु देव ने सुदूर दक्षिण में, केरल में जन जीवन की विषमताओं की समाप्ति का दायित्व अपने कन्धे पर लिया था । सारी रचना प्रक्रिया के पीछे जो शक्ति विद्यमान रही वह यही सुधारवादी दृष्टि है । वस्तुतः उत्तर भारत के लोगों ने कबीर दास को प्रमुख रूप में समाज सुधारक ही माना था कबीर की सुधारवादी दृष्टि यह विश्व बन्धुत्व की प्रेरणा से प्रवर्तमान होती है । कबीर ने एक ऐसे समाज की कल्पना की थी जो शोषण रहित, वर्ग रहित, धार्मिक पाखण्डों से मुक्त मानव मात्र के कल्याण की कामना से परिपूरित थे । इसके लिए उन्होंने जिस मार्ग को अपनाया था वह सुधारवाद था । आज की भारतीय परिवेश में कबीर अत्यन्त प्रासंगिक है । क्योंकि आज भारतीय समाज में व्याप्त सांप्रदायिक स्थितियाँ विषाक्त मानसिकता को जन्म लेने वाली बन गयी है । एक ओर हरिजनों को जलाया जा रहा है तो दूसरी ओर मसजिद गिराया जा रहा है । मंदिरों पर भी आक्रमण होता रहा है । मनुष्य सांप्रदायिकता के विष से पागल सा होता रहा है । धर्म की रक्षा का बहाना बनाकर खून की नदियाँ बहाना, स्वार्थ की प्रतिष्ठा करना, राजनीतिक खेल का प्रमुख अंश बन गये हैं । निरी और निर्दोष व्यक्तियों की हत्यायें पीड़ित वर्गों पर किये गये, अत्याचार, जाति वाद और धर्म वाद से उत्पन्न विभीषिकायें सांप्रदायिक दल आदि

ये दिखाते हैं कि कबीर के विचार आज प्रासंगिक है ।

जाति पांति पूछे नहिं कोइ । हरि को भजे सो अरि का होइ ।।

वादी उक्ति ये सिद्ध करती है कि जातिवाद का कोई भी अर्थ नहीं है । जाति बाहरी वस्तु है, अज्ञान की उपज है, शोषण का आधार है और वर्ण व्यवस्था की सब से विषैली आधार शिला है ।

उधर श्री नारायण गुरु ने भी जाति व्यवस्था को कुठाराघात किया था । गुरु यह मानते थे कि जाति प्रथा भारतीय जन जीवन का सब से बडा अभिशाप है । केरल की हिन्दू जनता में व्याप्त जातीयता के विषाक्त परिणामों को अपनी आँखों से देखने के कारण गुरु ने इस का सर्व शक्ति से विरोध करना चाहा । मनुष्य को शूद्र कहकर उसके अधिकारों का शोषण करने वाले उच्च वर्ग के लोगों के प्रति इन के अज्ञान के प्रति गुरु ने संघर्ष करने की बात कही । इसलिए गुरु ने कहा था "मनुष्य के लिए मनुष्य को एक ही जाति है, एक ही धर्म है और एक ही ईश्वर है।" समूचे भारत के लिए आज की परिस्थिति में संघट समाधान का मूल मंत्र यही हो सकता है यदि भारती जनता कबीर और श्री नारायण गुरु के विचारों को स्वीकार करने के लिए आगे आयेंगे तो हिन्दु जनता में विद्यमान वर्ण विद्वेष ही नहीं हिन्दु मुसलमान सिक और ईशाईयों के बीच दिखाई पडने वाले भेद भी समाप्त कर सकते हैं । कबीर और श्री नारायण गुरु उत्तर और दक्षिण के दो प्रकाश स्तंभों के रूप में खडे होते हैं जो सांप्रदायिकता के अन्धकार में पथ भ्रष्ट होने वाले जनता के लिए प्रकाश की किरणों को फैलाते रहे ।

सामाजिक कुरीतियों के और शोषण के अंत को भी दोनों महात्माओं ने लक्षित किया था । सामाजिक वाद को प्रतिष्ठित करने के लिए और वर्गहीन समाज की स्थापना करने के लिए बहाना बनाने वाले राजनैतिक नेताओं के सामने कबीर और श्री नारायण गुरु प्रश्न चिन्ह खडा कर देते हैं । कबीर ने हमेशा सरल और शोषण

रहित समाज की परिकल्पना की थी । संपत्ति को एकत्रित करने के विरोध में हमेशा उन्होंने अपने विचारों को प्रकट किया था । आज के समाज के सामने सब से बडी चुनौती यह है कि किस तरह संपत्ति का समान वितरण किया जा सकता है । नियम और दण्ड नीति इस कार्य में सरकार की सहायता नहीं कर सकता । विप्लव, विलाप और कलाप भी अर्थ की समान वितरण के लक्ष्य को नहीं कर सकतीं । ऐसी परिस्थिति में कबीर की वाणी हमारी सद्बुद्धि का पथ प्रदर्शन कर सकती है ।

साई इतना दीजिए जामे कुटुम्ब समाई
मैं भी भूखा न रहूँ साधू न भूखा जाय ।।

वाली उक्तियाँ यह सिद्ध करती हैं कि हमारे आर्थिक विषमताओं का अंत आत्म नियंत्रण से हो सकता है । कबीर का यह विचार आज के भारतीय आर्थिक परिप्रेक्ष्य में हमारी सद्बुद्धि के लिए दिशा निर्देश देती है । व्यक्ति की आवश्यकताओं की सीमा होनी चाहिए । सुख और भौतिक लालच की सीमा रेखा यदि तय नहीं की जाती तो उसका अंत अत्यन्त भयानक होता है । सात्विक और सरल जीवन की इशारा करने वाले कबीर के विचार समाज के आर्थिक ढाँचे को स्थिर बनाने में सहायक है ।

उधर श्री नारायण गुरु ने भी सादगी से युक्त जीवन बिताने की बात कही है । धनोपार्जन के लिए निन्दनीय कार्य करने से लोगों को रोका
"परस्वाहृति तत्चिन्ता चार्ज्जितास्तेय संज्ञिता
तदास्तेय प्रतिष्ठायाँ रत्नोपस्थान मुच्यते ।"
यह उक्ति से सिद्ध होती है कि किसी भी हालत में दूसरों के धन का अपहरण और उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए । दूसरों के कल्याण के लिए अपने कर्मों को

आयामित करने का महान सन्देश गुरु देव ने दिया था ।

"अवनिवनेन्नरियुन्नतोके योर्ता -
लवनि यिलादि ममायोरात्म रूपं ;
अवनवनात्म सुखत्तिनाचरिकु-
न्नवयपरन्नु सुखतिनाय् वरेणम् "

समसामयिक भारतीय सामाजिक स्थिति में आयी हुई विषमता को दूर करने का सार भूत सन्देश यहाँ विद्यमान है । उसी तरह शोषण को समाप्त करने के लिए शोषित वर्गों को अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संघटित होने की बात, गुरु ने कही । समय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए यहाँ गुरु कबीर से भी आगे बढते दिखाई पडता है । उन्होंने कहा "संघटन से शक्त होना चाहिए और विद्या से प्रबुद्ध होना चाहिए ।"

इतना ही नहीं उन्होंने जिस संघटन की कल्पना की थी वह केरल में यथार्थ रूप धारण कर गयी है । यहाँ गुरु व्यावहारिक सद् भावनाओं के अधिक निकट दिखाई पडते हैं । क्योंकि शोषित, पीडित एवं मर्दित जनता का उद्धार आपसी संघटन से ही हो सकता है ।

सामाजिक परिवर्तन को संभावी बनाने के लिए जिस रास्ते को कबीर ने स्वीकारा था वह संघर्ष का नहीं था । जन मानस में मेल मिलाप को प्रतिष्ठा करने के लिए अहं का नाश और प्रेम का प्रसार आवश्यक है । सामाजिक आचरण में प्रेम और दया को प्रतिष्ठित कर सद्भावनापूर्ण स्थिति बनाने का प्रयास कबीर ने किया । आज के भारतीय समाज की स्थिति को देखते समय कबीर का दृष्टिकोण अत्यन्त प्रासंगिक है । सहजीवों से प्यार करने की बात और प्यार के मार्ग से

मानव जीवन की मुक्ति को सार्थ बनाने का सन्देश कबीर ने दिया था ।

पोथी पढ पढ जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
एकै अखर प्रेम का, पढै सो पंडित होय ।।

जैसी पंक्तियाँ एक ऐसे समाज की परिकल्पना करते है जिस की अंदरधारा प्रेम से युक्त है ।

श्री नारायण गुरु ने भी सहजीवों के प्रति प्रेम और करुणा की भावना को प्रवाहित किया था । असहाय और निर्बल व्यक्तियों के प्रति प्रेम की धारा बहा दी, दूसरों की पीडाओं को अपनाया ।

ओरू पीडयेरुंपिनुम् वरु
त्तरु तेनुल्लनुकम्पयुम सदा
करूणाकरा नल्कुकेन्नुल्लिल् निन्-
तिरूमेयू विट्टकलात चिन्तयुम

अस्लन्पनुकम्पमून्निनुम्
पोस्लोन्माणित्तु जीवतारकम्
अस्लुल्लवनाणु जीवि ये -
न्नुरुविट्टीटुकयी नवाक्षरी

प्रस्तुत उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि समाज में कल्याण कारिणी शक्ति को प्रवाहित करने के लिए प्रेम और करुणा की वर्षा उन्होंने की थी । आधुनिक सामाजिक स्थितियों को ध्यान में रखते हुए गुरु की यह दृष्टि अत्यन्त प्रासंगिक है क्योंकि आज की सभी समस्याओं के मूल में प्यार और करुणा की कमी

विधमान है । इस प्रकार सामाजिक सुधार को सामने रखते हुए दोनों सुधार वादियों ने अपनी कालजयी भावना को जनहित के लिए प्रवाहित करके अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया था ।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य :

धर्म के नाम पर आज भारत में होने वाले संघर्ष की पृष्ठभूमि विचार करते समय कबीर और श्री नारायण गुरु के धर्म संबन्धी विचार अत्यधिक प्रासंगिक है । धर्म को बाहरी आचरण समझना सब से बडी मूर्खता है । धर्म व्यक्ति के अंदरमन की अवधारणा है । उसे बाहरी अनुष्ठान कर्मकाण्ड या रीति रिवाज़ पर सीमित करना पाखण्ड है । धर्म को मंदिर की मूर्तियों तक, मसजिद के मीनारों तक या गुरुद्वारे के द्वार तक सीमित कर देना आज के संकट के कारण है । आगे राजनैतिक दलों द्वारा स्वार्थ सिद्धि के लिए धर्म के झण्डे पहराना और आपसी मार काट का आयोजन करना धर्म के नाम पर की जानेवाली निरंकुशता का परिणाम है । कबीर और श्रीनारायण गुरु ने इस प्रकार की बाहरी धार्मिकता का विरोध किया है । सगुण और निर्गुण उपासना पद्धतियों का आतंरिक लक्ष्य को समझते हुए यह सिद्ध किया है कि बाहरी विभेदों के अन्दर एक ही सत्ता की महता है । बाहरी आचरणों का विरोध करते हुए कबीर ने सद धर्म की अस्मिता की तलाश की है । कबीर के अनुसार ईश्वर निर्गुण और निराकार है मूर्तियों तक सीमित नहीं है ।

पाहन पूजूँ हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार
ताते या चाकि भलि पीस खाय संसार ।।

वाली उक्तियाँ मूर्ति पूजा का विरोध अवश्य करती हैं । परन्तु मन की एकाग्रता पर आधारित सूक्ष्म ईश्वर संकल्पना अवश्य प्रोत्साहन देती है । बाहरी आचरणों की मूल्य हीनता पर कबीर ने ज़ोर दिया था ।

कबीर दुनियां देहुरै, सीस नवांवण जाइ ।
हिरदा भीतरि हरि, बसै, तूं ताहीं सौं ल्यौ लाइ ।।
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जांणि ।
दसवां द्वारा देहुरा, तामै जोति पिछांणि ।।

वाले उदाहरणों से कबीर ने ईश्वर को मन की उपासना स्थली पर प्रतिष्ठित करना चाहा अगर व्यक्ति राम और रहिम को मन की पूजास्थली में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं तो किसी भी हीन कृत्य से उसकी मुक्ति हो सकती है । मन के विकट और विद्वेष की परिसमाप्ति के लिए कबीर का प्रस्ताव बहुत ही प्रासंगिक लगता है ।

श्री नारायण गुरु ने भी सगुण उपासना के माध्यम से निर्गुण की ओर बढ कर मन में ईश्वर की प्रतिष्ठा करने की बात अपने विविध कर्मों से सिद्ध की । शिवलिंग की प्रतिष्ठा से सगुणोपासना का आरंभ करके आईने की प्रतिष्ठा की चरम सीमा तक पहुँचना । व्यक्ति मन में ईश्वर को ढूँढ कर अपने आप में ईश्वरत्व के बोध को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से और धर्म के भीतर के संघर्ष को समाप्त करने के उद्देश्य से श्री नारायण गुरु ने यह कहा था कि धर्म जो भी हो मनुष्य अगर सुधर जाय तो वही सही बात । धर्म की बाह्यता के ऊपर मनुष्य की आन्तरिकता को प्रतिष्ठित करने की गुरु की दृष्टि कबीर की दृष्टि की समानवर्त्ती है । गुरु के वचन आधुनिक भारतीय परिस्थिति में अत्यधिक प्रासंगिक सिद्ध होती है । श्री नारायण गुरु ने अन्य धर्मों के प्रति खास कर इस्लाम धर्म और पैगम्बर मुहम्मद के प्रति भी बडी सम्मान की दृष्टि प्रकट की है ।

दर्शन और विश्व बन्धुत्व के आधार :

कबीर और श्री नारायण गुरु ने अपनी समूची आध्यात्मिक यात्रा में दर्शन के भावात्मक पक्ष को स्वीकार किया है । भारतीय दार्शनिक परंपराओं के

अनुसार द्वैत अद्वैत की स्थितियों से गुज़रते हुए आत्मा की सर्वोच्चता पर और परमात्मा की सर्वव्यापकता पर ज़ोर दिया है । दर्शन इन दोनों महात्माओं के लिए निर्दिष्ट पथ मात्र है जिन से होकर जीव ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान को प्राप्त करता है । जीव और ब्रह्म की एकता का आभास माया में जगत की नश्वरता को पहचानने का आत्मिक प्रकाश प्रदान करता है । संसार के प्रति होने वाले असीम लगाव को मिटाने के लिए दोनों महात्माओं की दार्शनिक दृष्टि सहायक सिद्ध होती है । किसी भी बुद्धि जीव के लिए समसामयिक जीवन की उष्णता से मुक्ति इन्हीं सन्दर्भों में से उजागार हो सकती है । भक्ति दर्शन और जीवों के नित्य संबन्ध को समझाने में कबीर और गुरु देव समान रूप से सफल हुए है । विद्यार्जन के माध्यम से अविद्या की समाप्ति और भौतिक संकटों से मुक्ति, इन दोनों महात्माओं का लक्ष्य रहा ।

वस्तुत: कबीर और श्री नारायण गुरु के सन्देश, विश्व बन्धुत्व के संदर्भ में अत्यधिक प्रासंगिक है । मानव को जाति, धर्म, भाषा एवं देश की सीमा रेखाओं से मुक्त कर अखिल बन्धुत्व की सीमाओं से जोडने में कबीर और गुरु के प्रयास महनीय है । विशेष रूप से यद्यपि भारतीय परिप्रेक्ष्य में कबीर और महात्मा श्री नारायण गुरु के विचार अधिक प्रासंगिक है । फिर भी उनकी विश्व जनीनता पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं प्रकट किया जा सकता । धर्म, दर्शन और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य से जुडकर के और परिप्रेक्ष से कटकर के उनकी प्रासंगिकता बनी रहती हैं । क्योकि दोनों महात्माओं के विचारों का यह पक्ष इतिहास परंपरा और भौगोलिक स्थिति से जुडता है तो दूसरा पक्ष इन सीमा रेखाओं को लाँघकर विश्व मानव की मानसिकता से तादात्म्य स्थापित करता है ।

किसी भी अध्ययन की गरिमा का आधार प्रतिबद्धात्मक दृष्टि से जुडकर अधिक प्रासंगिक बनता है । कवि और कलाकार की दृष्टि कालजयी बनकर आने वाली पीढियों की ज़िन्दगी की स्थितियों की विविधता को जब अपने अन्दर समाहित करती है तब वह कवि या कलाकार सही मायनों में अनश्वर बन जाता है । महात्मा कबीर और महात्मा श्री नारायण गुरु की दृष्टियों की गहराई उपर्युक्त तत्व का समर्थन करती है । कबीर और श्री नारायण गुरु की रचनाओं की प्रासंगिकता को सामाजिक स्थितियों के धरातल पर अध्ययन का विषय बनाने पर यह स्पष्ट होता है कि उनकी दृष्टि, विचार शैली, चिन्तन की भूमिका सामाजिक प्रतिबद्धता और मानवीय अवबोध समय की ललकार को पराजित करने वाले है ।

कवि और समाज सुधारक के व्यक्तित्व जब एक ही महात्मा में समाहित होते हैं तब रचना धर्मिता और सामाजिक प्रतिबद्धता नयी सीमा रेखाओं को छूने लगती है । कबीर और श्री नारायण गुरु दोनों ने सब से पहले समाज को ही देखा । समाज के दलित, पीडित और शोषित वर्ग के लिए उनके उद्धान की परिकल्पना करते हुए समाज में विद्यमान जातिगत, धर्मगत, अर्थगत असमानताओं को दूर करना चाहा था । इस के लिए नवजागरण का सन्देश देना अवश्य था । धर्मगत और जातिगत स्पर्धाओं को लुटाकर मानवीयता के सही बोध को समाज में प्रवाहित करने के लिए रूढियों को उखाडकर फेंकना और अर्थहीन धार्मिक रीति रिवाज़ों का खण्डन करना आवश्यक था । क्योंकि इन महापुरुषों का जीवन काल ऐसी सामाजिक मान्यताओं के बीच उभरा था जो सवर्ण धर्म व्यवस्था से प्रताडित होकर सामाजिक नीति और न्याय से वंचित रह गया था ।

कबीर और गुरु ने सामाजिक उद्धान की प्रतिबद्धात्मक दृष्टि को अपनाते हुए काव्य धर्म को निर्धारित किया था । अतः कवि कर्म मानव धर्म का अनुगामि बन जाता है । काव्य में चमत्कार लाना था कल्पना की पंखों पर उडते हुए वायवी सपनों को संजोना उनका लक्ष्य नहीं था । कबीर और गुरु की रचना दृष्टि धरती के मानव, समाज के आचार-विचार, ईश्वर के नाम पर किये गए अत्याचार, धार्मिक आचरण के आधार पर जन्म लेने वाले पाखंड, निम्न जाति के कहलाने वाले लोगों के प्रति किये गये अमानवीय व्यवहार, ईश्वर के सूक्ष्म स्वरूप को भुलाकर स्थूल पिण्ड में यथार्थ को ढूँढने की प्रवृत्ति आदि का विरोध सही मानव बोध के जागरण के लिए आवश्यक था । कबीर ने अपनी तीखी वाणी के माध्यम से खण्डन की नीति को अपनाते हुए जनमानस में विद्रोह की चिनगारी को प्रज्ज्वलित करना चाहा । ये चिनगारी समय के साथ नया रूप धारण करके दुराचरण और कुरीतियों का दहन करें इस पर कबीर का पूरा विश्वास था । इसलिए समूचे काव्य में महात्मा कबीर ने हिन्दु और मुसलमान दोनों के धार्मिक कट्टरता खुल कर विरोध किया ।

समन्वयवादी संस्कृति के सूत्रधार के रूप में ××× उत्तर भारत में कबीर प्रतिष्ठित हुए थे और दक्षिण में गुरु ने सांस्कृतिक उद्धान की स्थितियों की पुनःस्थापक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की थी । इस तरह कबीर और गुरु दो युगों में दो भौगोलिक सीमाओं में जीवित रहने वाले समान बोध से प्रभावित महान व्यक्ति है ।

आधुनिक भारतीय परिवेश में कबीर और गुरु दोनों अत्यन्त प्रासंगिक है । आज देश, जाति, भाषा क्षेत्र और धर्म के नाम पर विघटन बोध से आतंकित हुआ है । ऐसे अवसर पर देश की रक्षा और एकता की पुनःस्थापना कबीर और गुरु के सिद्धान्तों को व्यावहारिक बनाने से ही संभव है । जाति और धर्म के दायरे से मनुष्य को मुक्त करना कबीर और गुरु का लक्ष्य रहा । जाति और धर्म को

महत्वहीन समझ कर आत्मा और परमात्मा की अदृश्य एकता को समर्थन करना और उसी की रोशनी में जीवन की समानता को स्थिर करना उन दोनों का लक्ष्य रहा । कबीर और गुरु ने आध्यात्मिक उन्नयन के साथ मानव की भौतिक उन्नयन का भी आधार ढूँढा था । अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखकर धन और दौलत के अति मोह से व्यक्ति को बचाने का भी मार्ग उन्होंने सूचित किया है । आज के असंतुष्ट समाज केलिए आर्थिक संघर्ष की परिसमाप्ति की सूचना उनके सन्देशों में मिलती है । समान अर्थ वितरण की संभावना रोज़ी-रोटी को कमाने की व्यवस्था, व्यक्ति के भौतिक जीवन को सुखमय बनाने की दिशा का निर्धारण करती है । आर्थिक दृष्टि से, समाजवादी दृष्टि से ये सूचनायें अत्यन्त प्रासंगिक है ।

विश्व मानव की परिकल्पना भी इन दोनों महान साधकों की वाणी में साकार होने लगती है । जाति, धर्म, रंग, भाषा, क्षेत्र आदि की सीमाओं से स्वतन्त्र होने वाले विश्व मानव आज के संकट का समाधान ढूँढ निकाल सकते हैं । इसके लिए उपयुक्त समूची शिक्षा इन दोनों महात्माओं की रचनाओं में परोक्ष रूप में विद्यमान है । इस कारण देश और काल की सीमा रेखाओं को पार करती हुई कबीर और श्री नारायण गुरु की चेतना विश्व व्यापिनी बन जाती है । भारतीयता की अन्तरात्मा के प्रकाश पुंज से विकीर्ण होने वाली ज्योर्तिमयता को दिशान्तर तक विकीर्ण करते रहने की अमर साधना का ज्वलन्त उदाहरण कबीर और श्रीनारायण गुरु प्रस्तुत करते हैं । इसलिए आने वाले कई युगों तक उनकी रचनाओं की आन्तरिक सत्ता प्रासंगिक बनी रहीं ।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

हिन्दी की पुस्तकें

1. अद्वैत वेदान्त	राममूर्ति शर्मा नाशनल पब्लिशिंग हाउस 23 दरियागंज, दिल्ली - 6.
2. अद्वैत दर्शन - इतिहास तथा सिद्धांत	डा. राममूर्ति शर्मा ईस्टेन बुक लिंकस , दिल्ली (भारत)
3. एक सौ आठ उपनिषद् साधना खण्ड	पं. श्रीराम शर्मा आचार्य संस्कृति संस्थान बेरली (उत्तर प्रदेश)
4. कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त	डा. सरनाम सिंह शर्मा भारतीय शोध - संस्थान, गाँधी शिक्षण समिति, गुलाबपुरा ।
5. कबीर के धार्मिक विश्वास	डा. धर्मपाल मैनी - ई - । -सैक्टर-।4 चण्डीगढ़ - 3
6. कबीर की विचार धारा	गोविन्द त्रिगुणायत साहित्य निकेतन श्रद्धानन्द पार्क कानपूर
7. कबीर दर्शन	डा. रामजीलाल सहायक हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय अग्रवाल प्रेस, इलाहाबाद

8. कबीर ग्रंथावली सटीक	प्रो. पुष्पलाल सिंह एम.ए. अशोक प्रकाशन नई सडक, दिल्ली - 6.
9. कबीर ग्रंथावली	डा. पारसनाथ तिवारी हिन्दी परिषद प्रयाग सन् 1961
10. कबीर वचनावली	अयोध्या सिंह उपाध्याय नागरी प्रचारिणी सभा काशी सन् 2003
11. गोस्वामी तुलसीदास- व्यक्तित्व, दर्शन, साहित्य	रामदत्त भारद्वाज भारती साहित्य मंदिर फटवार (दिल्ली)
12. तुलसी साहित्य में नीति, भक्ति और दर्शन	डा. रहिश्चन्द्र वर्मा संजीव प्रकाशन कुरुक्षेत्र, हरियाणा
13. दर्शन संग्रह	डा. दीवानंद प्रकाशन शाखा सूचना विभाग उत्तर प्रदेश
14. धर्म और समाज	डा. राधाकृष्ण राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

15. प्रेम दर्शन	देवर्षि नारद परिचय भक्ति सूत्र हनुमान प्रसाद पोद्दार
16. भक्ति का विकास	मुंशी राम शर्मा चैखम्बा विद्या भवन वाराणसी, सन् 1958
17. भारतीय दर्शन की रूपरेखा	एम. हरिश्चन्द्र राजकमल प्रकाशन
18. भक्ति आन्दोलन और साहित्य	डा. एस. जोर्ज प्रगति प्रकाशन सन् 1978
19. भारतीय दर्शन	उमेश मिश्र हिन्दी समिति, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ
20. महाभारत कालीन समाज	सुखमय भट्टाचार्य लोक भारती प्रकाशन महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद - 1
21. मध्यकालीन धर्म साधना	हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद

22.	रामकृष्ण काव्येतर हिन्दी सगुण भक्ति काव्य	डा. छोटेलाल एम.ए, पी.एच.डी भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ
23.	रामचरित मानस का तत्व दर्शन	डा. श्रीराम कुमार एम.ए, पी.एच.डी लोक चेतन प्रकाशन जबलपूर
24.	हिन्दी वैष्णव भक्ति काव्य - काव्यादर्श तथा काव्य सिद्धांत	डा. योगेन्द्र प्रताप सिंह साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद
25.	हिन्दी साहित्य एक परिचय	डा. त्रिभुवन सिंह हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी - सन् 1968
26.	हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु	डा. नगेन्द्र हिन्दी विभाग दिल्ली विश्व विद्यालय, 1963
27.	हिन्दी साहित्य	हज़ारी प्रसाद द्विवेदी उत्तर चन्द कपूर एंड सन्स सन् 1963
28.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी - सं. 2025

29. हिन्दी साहित्य का इतिहास — डा. राममूर्ति त्रिपाठी, मानक चन्द बुक डिपो, उज्जैन सन् 1967

30. हिन्दी वैष्णव भक्ति काव्य - काव्यादर्श तथा सिद्धान्त — डा. योगेन्द्र प्रतापसिंह, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

31. हिन्दी साहित्य का निबन्धात्मक इतिहास — आचार्य उमेश शास्त्री, देवनागर प्रकाशन, चौडा रास्ता, जयपुर

मलयालम की पुस्तकें

32. आत्म विद्या — वाग्भटानन्दन, आत्मविद्या प्रसिद्धीकरण समिति, अष्टीकोट सौत, कन्नुर - 9.

33. आत्मोपदेश शतकम् - शारदाव्याख्यानम् — स्वामी विमलानंद - सन्यासाश्रम, हैदराबाद, गुजारात

34. इन्नते चिन्तकल — टी चाण्डी, एम.एम. पब्लिकेशनस लिमिटड, कोट्टयम

35. एस एन डी पी योग चरित्रम	प्रो॰ पी एस वेलायुधन एस एन डी पी योगम कोल्लम, केरल
36. कुण्डलिनी पाट् - श्रीनारायण गुरुदेव चरित्रम	एम दामोदरन श्रीनारायण बुक हाउस एस वी कोलनी कोषिकोड - 6
37. केरलचरित्रतिले अवगणिक्कप्पेट्टा एटुकल	टी॰ एच॰ पी॰ चेन्तारश्शेरी प्रभातम् प्रिण्टिंग कंपनी तिरुवनन्तपुरम्
38. गुरुस्मरणाम्म्	श्री विद्याधिराजा सभा तिरुवनन्तपुरम्
39. गुरु स्मृति	एम॰ एम॰ पीताम्बरन मुकुन्दपुरम एस एन डी पी यूनियन इरिंजालकुडा
40. जीवित विजयम् निंगल्क्	फा॰ जोस, पन्तपल्लम, तोटियिल, एक्सिकूटीव एडिटर दीपिका जीवन बुक्स, भरणंगानम् - 686578

41. जीवमुक्ति विवेकम्
जी बालकृष्णन नायर
श्रीराम कृष्णाश्रम
पुरनाट्टुकरा, त्रिश्शूर

42. दर्शन माला - श्रीनारायण गुरु
व्याख्याता - विद्यानंद स्वामिकल
श्रीनारायण धर्म संघम् ट्रस्ट
शिवगिरि मठ, वर्कला

43. नारायण गुरु - समाहार ग्रंथम्
पी के बालकृष्णन
साहित्य प्रवर्तका - कोओपरेटीव
सौसैटी लिमिटड
कोट्टयम, केरल

44. नारायण गुरु स्वामी
प्रो. एम. के. सानू
विवेकोदयम् प्रिंटिंग आंड पब्लिशिंग कमिटि
इरिंजालकुडा

45. पिन्नोक समुदाय विप्लवम्
एन. के. कुटिरामन, अडवकेट
त्रिश्शूर - 12
एस एन वी समाजम् आलपाट

46. बुद्धमतम्
एम. जी कृष्णवारियर
तिरुवितांकूर सर्वकलाशाला
प्रसिद्धीकरण वकुप्प्,
तिरुवनन्तपुरम्

47. मनशक्ति - श्रीमत् विवेकानन्द स्वामिकलुटे ओरु प्रसंगम्	के रामन मेनोन एस टी रेड्डियार आन्ड सन्स
48. राजयोगम्	एन कुमारनाशान शारदा बुक डिपो तोन्नक्कल
49. विवेकानन्द साहित्य सर्वस्वम् ओन्नाम् भागम् - योगत्रयम	ईश्वरानंद स्वामी श्रीरामकृष्णाश्रम विलंगल, पुरनाट्टुकरा, त्रिशूर
50. वेदान्त परिचयम्	नित्य चैतन्ययति नारायण गुरु कुला श्रीनिवासपुरम् पी ओ वरक्कला
51. श्रीनारायण गुरुदेव कृतिकल (1983)	श्रीनारायण धर्म संघम ट्रस्ट शिवगिरि मठम् वरक्कला
52. श्रीनारायण गुरुदेव कृतिकल - संपूर्ण व्याख्यानम् (वाल्यम् 1 - 10)	प्रो. जी बालकृष्णन नायर श्रीनारायण धर्म संघम ट्रस्ट शिवगिरि मठम् वरक्कला, केरल

53. श्रीनारायण गुरू स्मरणकल	पषुमुपिल्लि अच्युतन विवेकोदयम् बंक्स इरिंजालकुडा
54. श्रीनारायण दर्शनमंजरी	बी करूणाकरन मंजरी पब्लिकेशन्स मुण्डकल, कोल्लम्
55. श्रीनारायण गुरुदेवन जीवचरित्रम्	वाटयिल सदाशिवन वाटयिल पब्लिकेशन्स् कटक्काऊर
56. श्रीनारायण धर्मम् - श्रीनारायण गुरुदेवन	व्याख्याता - स्वामी श्रीनारायण तीर्थ शिवगिरि मठ, वर्कला
57. श्रीनारायण परमहंसन - जीवचरित्रम्	पंडित के के पणिक्कर विद्यारंभम् प्रेस आंड बुक डिपो प्राइवेट लिमिटड, आलपुषा
58. श्रीनारायण परमहंस देवन -	पी के भानू §स्वामी धर्मानंदजी§ सिन्ध्या, तैकाड तिरूवनन्तपुरम् - 14
59. श्रीनारायण युग प्रभावम्	एम के कुमारन और डा. टी भास्करन अन्तराष्ट्र श्रीनारायण गुरू वर्षा चारण कमेटी, वर्कला ।

60. श्रीनारायण गुरुस्वामिकलुटे जीवचरित्रम्	मूर्कोत्तु कुमारन पी के ब्रदर्स कोषिक्कोड
61. श्रीमद् भगवद् गीता "शिवारविन्दम्" भाष्यम्	जी बालकृष्णन नायर प्रसाधिका एम सरस्वतियम्मा शिवारविन्दम् पालकुलंगरा, तिरुवनन्तपुरम्
62. श्रीमद् भागवतम्	मुषगोट्टुविला कृष्ण पिल्ला साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघम कोट्टयम्
63. स्वतन्त्र इन्द्रियुटे मतम्	स्वामी धर्म तीर्थन् - बी ए, एल एल बी महाबोधी बुद्ध शिष्यनिल निन्नुम प्रसिद्धीकरिकुन्नत् कोषिकोड, 1948.

अंग्रेज़ी के पुस्तकें

64. Advaita Vedanta - Swami Vivekananda
Published By Swami Ananyananda
President, Advaita Ashrama
Himalayas.

65. An Integrated Science of the Absolute - Vol.I
East West University of
Brahma Vidya, Srinivasapuram.P.O.
Varkala,
Kerala.

66. A Short History of Sanskrit Literature - T.K. Ramachandra-
Aiyar,
R.S. Vadhyar &
Sons, Palaghat.

67. Gayatri - T.K. Taimini M.Sc. Ph.D(London)
The Ananda Publishing House,
3A Lowther Road,
Allahabad,
India.

68. Hinduism - Swami Vivekananda.
The President, Sri Ramakrishna Math,
Mylapure, Madras.

69. Selections From Swami Vivekananda
Published By Swami Ananyananda
President, Advaita Ashram,
Himalaya.

70. Self Realisation- Life and Teachings of Sri Ramana Maharshi.-
B.R. Narasimha Swami,
Sri Ramanashram, Thiruvannamalai.

71. Sree Narayana Guru- Murkott Kunnappa.
The Director, National Book Trust,
India.

72. Sree Narayana Guru and Social Revelution - C.R. Mitra
Mitraji Publications,
Shertallai, 688624,
Kerala.

73. Sri Aravindo - The Synthesis of Yoga
Sri Aravindo Ashram,
Pondichery.

74. Studies in Kerala History - Elamkulam Kunjan Pillai
Sathyanikethanam
Trivandrum.

75. The Complete Works of Swami Vivekananda - Vol.III
Advaita Ashram,
Mayavati.

76. The Life Devine - Sri Aravindo,
Sri Aravindo Ashram,
Pondichery.

77. The Philosophical and Religious Lectures of Swami-
Vivekananda
Condensed and Detol by Swami-
Thapasyananda,
Sri Ramakrishna Math,
Mylapure, Madras - 600 004.

78. The Philosophy of Sree Narayana Guru - Dr. S. Omana
Doctoral Thesis Honoured By
the University of Kerala -
Narayana Gurukula, Srinivasa-
puram P.O.,
Varkala, Kerala.

79. The Word of the Guru- Nataraja Guru.
Paico Publishing House,
Ernakulam, Cochin -11.

80. Unitive Understanding Vol.II - Nataraja Guru
Gurukula Institute of Aesthetic -
Values
Narayana Gurukula,
Bangalore,
Karnataka.